

विषय सूची

| विषय | पृ. |
|---|-----|
| १ भगवान् महावीर और अहिंसा | १ |
| २ भगवान् महावीर के पहले भारत में अहिंसा | १० |
| ३ आजीविक सम्पदाय में अहिंसा | २२ |
| ४ म० गौतम बुद्ध द्वारा अहिंसा का विकास | ३१ |
| ५ महात्मा गांधी और अहिंसा | ४० |
| ६ सौर्य साम्राज्य में अहिंसा का प्रसार | ४८ |
| ७ उपसंहार | ५१ |





अधिकारियों लोगों का खयाल है कि भारत में वैदिक या ब्राह्मणधर्म के ह्रास और बौद्ध या जैनधर्म के प्रचार के कारण ही शिथिलता का समावेश हुआ था। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान् लेखक ने जैनमत के पिन्धु उठाये जाने वाले इस प्रवाद का अनेक प्रमाण उद्धृत कर खण्डन किया है और साथ ही यह भी सिद्ध किया है कि जैन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिये सत्तम रह कर ही दया और अहिंसा धर्म का पालन करना आवश्यक है।

आज कल बहुत से जैन मतानुयायी अपनी मानसिक दुर्बलताओं की तरफ ध्यान देना अनावश्यक समझ केवल कीड़े भूँइयों की रक्षा करने की प्रवृत्ति को ही जैनधर्म-पालन की चरम सीमा समझते हैं। परन्तु श्रीयुक्त कामलाप्रसादजी जैन ने जैन शास्त्रों के अवतरण देकर कर्त्ता के मानसिक भावों पर ही हिंसा या अहिंसा की उत्पत्ति सिद्ध की है। साथ ही आपने ऐतिहासिक उदाहरण उपस्थित कर देश और आत्म रक्षा आदि के लिये राग द्वेष वर्जित युद्ध तत्त्व को धर्म बतलाया है।

आपकी उद्भूत की हुई मद्यीर की यह उक्ति—

“जे एमे मृग ते एमे मृग”

अर्थात्—जो कर्म ऐश में बोर हैं वे ही धर्म ऐश में बोर हैं ।
कामाव में ही गवर्णाएँ में निम्न गगने गोम्व हैं । यही उपदेश
गीतामें भी दिया गया है और इसे हर समय गमना गमना प्रत्येक
पुरुष का कर्तव्य है ।

इस “म० मद्यीर की अटिमा और मारन के सम्बन्ध पर उस
का प्रभाव” की एक आप गीत बान में अमरमन होत हुए भी
कनके होयक भीधुन कामताप्रमार्जी की पेगी उपासी सुन्दर
और सामायिक पुस्तक लिखों के निम्न हार्दिक सफाई दो हैं ।

यह पुस्तक प्रत्येक भावनशीली के चाहे बह जीत हो या जीने
लग, पढ़न और मनन करने योग्य है ।

विश्वेश्वरनाथ रत



भ० महावीर की अहिंसा

और

भारत के राज्यों पर उसका प्रभाव ।



(१)

भ० महावीर और अहिंसा !



‘गिरिमित्परादानरतः, श्रीमन् इव दन्तिनः अरदानरतः ।

तत्र शमरादानरतो, गतशूर्चिन्मपगतप्रसादानरतः ॥१४२॥’

—श्री बुद्धस्यव्यमूल्यात् ।

म्यामा समन्तमठाचार्यजी न आप न लगभग ६३-६४ हजार वर्ष पहले धम्मणात्तम भगवान् महावीर की मूर्ति में कहा था कि ‘ममो । आप दोषों के उपशम करने वाले शास्त्रों के रत्न हैं और अष्टाहिंसा के नाश होने में अहिंसामें अर्थों अमयदान सहित आप का विहार इस पृथ्वी पर उसी तरह हुआ, जिस प्रकार एक मद्र और शुभ सनजा युक्त मद्र मन दायी की गति होती है ।’ दूसरे शब्दों में कहें तो इसका भाव यही है कि भगवान् महावीर के सदुपदेश में मुमुक्षुओं को ‘सत्य’ के दर्शन हो गये थे और उनके धर्म प्रचार में हिंसावादों मन प्रयत्नों का अभाव होकर प्राणियों को सुख और शान्ति का लाभ हुआ था । इन ग्रन्थों में भ० महावीर की अहिंसा धर्म का प्रतिपादक

कहना सर्वथा उचित है। साम्प्रत भारत में अहिंसा सिद्धान्त का चमत्कार प्रकट करने वाले स्वयं म० गांधी जी कहते हैं कि—'मैं विश्वास पूर्वक यह बात कहूँगा कि महावीर स्वामी का नाम इस समय यदि किसी भी सिद्धांत के लिये पूजा जाना है, तो वह अहिंसा है। प्रत्यक्ष धर्म की उद्यता इसा बात में है कि उस धर्म में अहिंसा तत्त्व का प्रधानता है। अहिंसा तत्त्व को यदि किसी ने अधिक म अधिक, विस्तारित किया है, तो वे महावीर स्वामी थे।'।

महावीर स्वामी अहिंसा के महान् उद्देश्य के जहर, पर वह थे कौन ? सन्तोष में यह जान लेना भी जरूरी है। उस, जानिये, वह जैनियों के २४ तीर्थंकरों में सभ्य अन्तिम तीर्थंकर थे और आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले इस धरातल का सुशामित करते थे। वह स्वयं एक क्षत्री-पुत्र थे। उनके पिता राजा सिद्धार्थ शातृषशी क्षत्री थे और उनकी माता विश्वामित्रा राजा संघ के प्रमुख राजा चेटक की पुत्री थीं। शातृषशी क्षत्री भी यज्ञियन राजसूत्र में सम्मिलित थे, जो एक प्रकार का प्रजातन्त्रात्मक राज्य था। इस प्रकार म० महावीर का जन्म एक स्वार्थीन यानावरण में हुआ था, जिसमें 'आशा' नहीं थी कि 'ग्याय और सहयोग' की तूनी योजना थी। किन्तु म० महावीर की महान् आत्मा को मात्र अपने राज्य सूत्र द्वारा शासित प्रदेश को ही सुखी और स्वार्थीन देखकर सन्तोष न हुआ। उनका महान् ध्येय था जीव मात्र को सुखी और स्वाधान बनाना—विश्वप्रेम की पतितपावन जाह्नवी इस धरातल पर बहा देना। मस, वह राजमहल में न ठहर। घरकी छोड़ा—उस्वामूख उनार फेंक—एक लत्ता भी तन पर न रखा—पूरे परमहंस निर्ग्रन्थ हो गये। 'सिद्धपद' की प्राप्ति के लिये उन्होंने महान् योग का अनुष्ठान

किया और जरूरत उन्हें उनकी प्राप्ति न हुई, उन्होंने गुन न खोला, बल्कि आपत्तियों के आवरणों को भी चुपचाप सहन कर लिया। प्रेम और दुःख सहन के ध्येय मार्ग (Cult of love & suffering) को उन्होंने अपने महान् आदर्श द्वारा उपस्थित कर दिया—अहिंसा और प्रेम उनके रोम-रोम में टपका—मनुष्य तो मनुष्य परगु भी अपनी मूर्ता को गया बैठे। उन पर आज ? आज तो भारत के राष्ट्रीय रंग मंच पर दुःख सहने का यह अहिंसात्मक मार्ग अद्भुत कौतुक दिगा रहा है—उस का चमत्कार म० महावीर के आदर्श में विरल होकर भी आज फिर चमक रहा है। यह सत्य का माहात्म्य है और म० महावीर के नंदश की वैज्ञानिकता का प्रमाण है।

हा तो, धीरे तपस्व्यता और 'सत्य की महान् उपासना के बाद तीर्थंकर महाराज सर्वज्ञ हो गए—सिद्धि उन्हें मिल गई। अब स्वयमेव ही उनका लोक-हितकारी उपरग होने लगा। उनकी इस महान् सिद्धि का वागान उस समय के प्रसिद्ध मन-प्रयत्नक म० गीनम बुद्ध ने भी किया। अपने शिष्यों को उन्होंने बताया कि शाक-वृत्त महाराज सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बने जाते हैं और दुःख सहन के मार्ग द्वारा जन कल्याण का उपदेश देते हैं *। एक विपरीत मत के शास्त्र में इस प्रकार का कथन म० महावीर की महत्ता का प्रबल प्रमाण है। फिर मला पहिय, उन्हें सर्वज्ञ क्यों न माना जाय ?

२ 'निच्छे, आबुल्लो, नावपुत्तो स वपु, मज्ज' सत्वी अपरिमेय' 'अणदस्स परिशनाति ।' अथात्—'निश्चय शतवपु (महावीर) मज्ज और सर्वदर्शी है, वे अणु अणु और दशन के समान हैं।' इत्यादि—मत्तिभनिकाय (P T S) भा० १ पृष्ठ १२-१३

अच्छा तो, सर्वज्ञ होकर म० महार्थीर न 'अहिंसा धर्म' का उपदेश प्राणी मात्र की हितकामना के लिये दिया। उन्होंने पहले ही कहा, क्योंकि यह लोक की वस्तुस्थिति को हाथ में लिये हुए दर्पण क प्रतिगित्र की तरह स्पष्ट जानत थे कि —

जले जतुः स्थले जतुराकाशे जतुरव च ।

जतुमालाकुले लोक कथं मिथुरहिमरु ?

अर्थात्—'जल में जनु है, स्थल में जनु है और आकाश में भी जनु है। जब समस्त लोक जतुआ में भरा हुआ है तब कोई मिथु (मुनि) अहिंसक कैसे हो सकता है ? और उत्तर में यह लाया कि —

सूक्ष्मा न प्रतिपीडयन्ते प्राणिनः स्थूलमूर्त्तयः ।

ये शमयास्ते विजर्ज्यन्ते का हिंसा मयतात्मनः ! "

अर्थात्—सूक्ष्म जीव (जो अदृश्य होते हैं तथा न किसी में रूकते हैं और न किसी को रोकते हैं) तो पीड़ित नहीं किये जा सकते, और स्थूल जीवों में जिनकी रक्षा की जा सकती है उनकी की जानी है, फिर मुनि को हिंसा का पाप कैसे लग सकता है ? इस कथन में स्पष्ट है कि भावों की प्रधानता पर ही अहिंसा धर्म टिका हुआ है। यदि कोई व्यक्ति प्रगटतया चींटा-चिउड़ी आदि जीवों को मारने में तो डरता है, किन्तु रात दिन क्रोध-मान और लोभ के ताप में तपा हुआ दूसरों को दुःख पहुचाने और नष्ट करने का भाव रखता है, तो यह अहिंसावादी नहीं है। किसी को वस्तुतः दुःख पहुचाने और नष्ट करने पर भी वह महान् हिंसक है, क्योंकि उसके भाव-उसकी नियत वैसी ही है। इसलिये मगधान् ने कहा है कि —

अप्रादुर्भावं खलु गगादीना भरत्यर्हिसेति ।

तेषामनोत्पत्तिर्हिसेति जिनागमस्य मन्त्रेषः ॥ †

‘मच्चमुच्य कथाय माया का अमाय ही अहिंसा है और उनका सट्टाय हिंसा है। जिनागम का संगेप निष्कर्ष हो यह है। इसे न भूलिय और फिर सायधर्मी में कम कीजिये, आप पूरा अहिंसक हाने। यही कारण है कि लोक में अंतु ही अंतु मर रहन पर भी एक मिथुक पूर्ण अहिंसक हो सकता है। इस दृष्टि में ही म० महावीर ने हिंसा को दो प्रकार का बनाया है (१) माय हिंसा और (२) द्रव्य हिंसा अथान् स्थूल शरीरादि प्राणा का घात करना। किन्तु साथ ही यह स्पष्ट कर दिया है कि माय हिंसा के बिना कोरी द्रव्यहिंसा हिंसा नहीं कहा जा सकती। इसलिये जो व्यक्ति यन्त्राचार पूर्वक कार्य करता है—उसके माय दया में जीने हुए हैं, यदि उसने कदापि द्रव्य हिंसा भी हा जाये तो यह हिंसा का बोधा न होगा। मगयान् कहत है — *

मरदुर जियदुर जीरो अयदाचारम्म णिडिदा हिंसा ।

पयदस्म णन्थि चन्वो हिंमामत्तेण ममिदस्स ॥

अथान्—जीव चाहे चिय चाहे मर, परन्तु जो अयत्ताचार म काम करेगा उसे अयश्य ही हिंसा का पाप लगेगा। लेकिन जो मनुष्य यत्ताचार म काम कर रहा है उस प्राणिबन्ध हो जाने पर भी हिंसा का पाप नहीं लगना ।

किन्तु यहाँ पर शंका यह होती है कि एक गृहस्थ के लिये स्थूल जीवा की सर्वथा रक्षा करना असंभव है, उसे जीवन नियाह के लिये शस्त्राभ्रका भी उपयोग किसी न किसी समय करना ही

† पुष्पायमिद्रमुत्पत्तिर्हिसेति ४६

पड़ता है। इस दशा में यह अहिंसक कैसे रह सकेगा ? भगवान् महावीर ने अहिंसा के दो भेद करके इस शंका का निवारण पहले ही कर दिया है। वह कहते हैं कि अहिंसा का सर्वथा पालन तो गृह त्यागी मुनिजा ही कर सकते हैं। यह 'अहिंसा महायुत' है। किंतु गृहस्थ आश्रित रूप में ही उसका पालन करें। यह 'अहिंसा अणुयुत' है। दूसरे शब्दों में यूँ कहना चाहिये कि म० महावीर न गृहस्थ के लिये केवल जान बूझकर बिना प्रयोजन सकल करके किसी जीव को मारन या कष्ट पहुचाने की मनाई की है। येमे आरमी, उद्योगी और विरोधी हिंसा का त्यागी वह नहीं होता। अपने जीवन निवाह के लिये वह उनका त्याग कर ही नहीं सकता क्योंकि गृहस्थायम को चलाने के लिये उसे कुटना पीसना आदि गृहकर्म करके 'आरमी हिंसा' करनी होगी तथा आजादिका के उपार्जन द्वारा वह उद्योगी हिंसा में भी नहीं बच सकता एवं अपने आश्रित लोगों की रक्षा अथवा आत्मरक्षा के लिये उसे 'विरोधी हिंसा' भी करनी होगी। सारागत एक गृहस्थ यथासमय अपने भावा को दया में ओत प्रोत रखकर कम से कम हिंसा करने का उद्योग करेगा। यही उस का अहिंसायुत है। उसे अपने भावों को दया के काँटे पर हर समय तोलत रहना चाहिये। इस प्रकार की सावधानी रखने में वह निश्चय हिंसा न कर सकेगा और एक अपराधी को ठगट डेत हुये भी उसके भाव मूल न हो पायेंगे।

इस प्रकार के 'यत्स्थित अहिंसा-धर्मके विधानमें कायरता के लिये कहीं स्थान ही नहीं है, बल्कि भगवान् महावीर तो बहुत ही कि 'जे कम्म सूरत धम्म सूरत' अर्थात् जो कर्मवीर है वही धर्म-वीर बन सकता है। इसीलिये जैन सिद्धान्तमें मोक्ष पानेके लिये यह भी एक शर्त है कि श्रेष्ठतम शरीर वज्रपुष्प-नाराच सहनन आदि को धारण करने वाला पुरुष ही उसे पा सकता है। अतः शरीर

को भुला दन से अर्थान् शारीरिक चल चढ़ानका ध्यान न रखनेमें कोई भी व्यक्ति धर्म का पालन नहीं कर सकता। अहिंसक धन के नियम पराक्रमी होना पहले परमावश्यक है, क्योंकि अहिंसा मार्ग पर चलना कोई हसी खेल नहीं है। वह तलवार का धार पर चलना है। अतः अहिंसक धन के लिये मनुष्य को शारीरिक उल और आत्मबल दोनों को ही संचय करना आवश्यक है।

भगवान् महावीर ने प्रत्येक मुमुक्षु को पहले ही मार्गदर्शन कर दिया था कि 'यदि तুম मेरे धर्म पर विश्वास लाना चाहते हो तो नि एद्व धन आओ× किसी तरह की श्रद्धा और भय दिल में न रखो। तेन और एक मात्र धन जो अपने हृदय में स्थान दे कर जगत् को अमरदान दो।' उन्हा न स्वयं इस सन्देश का अपने आदर्श में मूर्तिमान् बना दिया। लोक कार्य में लगे हुए

× सम्पत्ति के नि शक्ति नृत् या प्रतिपदा 'पञ्चाशी' में मू किया गया है—

श्रद्धा भी, साध्व्य भीतिभयमेकाभिवा अमी ।

तस्य निष्क्रान्तिरतो भावो नि शस्तिर्यत ॥ ३८१ ॥

अर्थ—श्रद्धा, भी, साध्व्य, भीति, भय, ये सभी शब्द एक अर्थ के वाचक हैं। उस श्रद्धा अथवा भय से रक्षित तो आत्मा का परिणाम है, वही वास्तव में नि शक्ति भाव कहलाता है।" इस नि शक्ति भाव को हृदय में बनाय रखने कष्टि 'पञ्चाध्यायी' के कर्ता (१६वीं श०) श्रद्धा को जनय रहने का उपदेश देते हैं। बत करत हैं नि —

‘अपेक्षर कुदृष्टिर्ध स सतमिभयैयुत ।

नापि स्पृष्ट सुदृष्टि स सतमिभयैमनार् ॥ ६९४

अर्थ—“उत्तर में यह जानो कि जो निष्क्रान्ति है उसे ही सत प्रकार के भय हुआ करते हैं। जो सम्पत्ति है उस को भी भय भोग ही नहीं छू पाता।”

लोगों को उद्धान साधन किया और कहा- 'माई ! अपनी आजीविका न्याय-युक्त उपाजन करो । अन्याय और अत्याचार को न सृज्य अपनाओ और न दूसरों को अपनाने दो । तुम खुद जीओ और दूसरों को न केवल जीने ही दो, किन्तु उनके जीवन सुखी बनाओ । प्राणियों को अहिंसा धर्म का महत्त्व समझाओ । यदि वे न मानें और अन्याय पर तुल पड़ें तो तलवार के चल में उन्हें राह-रास्त पर ले आओ । किन्तु सदैव । निरर्थक हिंसा मत करो । धुर म धुर जीत पर भी दया भाव रखना ।' इस सन्देश को ही लक्ष्य कर मगधान् महारथार के धर्म में गृहस्थ की आजीविका के उपायों में 'असि-कर्म' अर्थात् सैनिक कर्म ही उसी तरह सर्व प्रधान रखा गया है, जिस तरह पहले तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेवजी ने युगों पहले इसे नियत किया था × सत्समुच्चय जीतों को समय और सुखी जीवन गितान का अग्रसर मिलेगा तभी वह राष्ट्र में धर्म की वृद्धि कर सकेंगे । इसीलिये मगधान् असि-कर्म को मुख्य बताया है, लेकिन, हस्त और वाणिज्य आदि उसके पञ्चान् रखते हैं । किन्तु इस कर्मका पालन ही ही एक सैनिक का वह अहिंसक बनाता है, क्योंकि उसका अहिंसा मात्र निरर्थक हिंसा न बचना है ।

(‘निरर्थक वधस्यागेन क्षत्रिया वृत्तिनो मताः’)

—सामन्थ

अपने कर्तव्य पालन करने के लिये वह जो हिंसा करता है, वह उसके लिये क्षतम्य है, क्योंकि उस अपन राष्ट्र धर्म का

× श्री ऋषभदेव जी ने आजीविका के उपाय कम प्रकार बताये थे —

“असि-कर्म वृषि-विद्या वाणिज्य कृषि-मव च ।

कमाणीमानि षोढा स्म प्रजानीवनहेतव ॥” आदिपुराण (पृष्ठ १६) श्री नगेन

भी पालन करना है और दीन दुर्बलों की रक्षा तथा अन्याय-
अत्याचार मेंटना है। इर्मोनिये श्री सोमदेवाचार्य उनके इस कर्म
को दयामाय का ही परिणाम बनान हैं* और कहत है कि —
यः शस्त्रवृत्तिः ममर सिपुः स्यात्, यः कण्टको वा निज मडलस्य ।
अस्त्राणि तत्रैव नृपाः क्षिपन्ति, न दीन-कामीन-शुभाशयेषु ॥
(यशस्तिक ३० पृ० ९६)

अर्थात्—“जो रक्षागण में युद्ध करने को सन्तुष्ट हो अथवा
अपने देश के कण्टक—उसकी उन्नति में बाधक—हो, क्षत्रिय और
उन्हीं के ऊपर शस्त्र उठात है—दीन, हीन और साधु आश्रय
दानों के प्रति नहीं।” अतः कहना होगा कि मगधान् महावीर
की अहिंसा न किसी गण्डू की उन्नति में बाधक है और न
उसमें धर्मोत्कर्ष छुनता है। यह तो प्रार्थामात्रक अभ्युदय के लिये
एक रक्षण-धीमा है। और सच पूछिये तो जब जब भारत में उस
की प्रधानता हुई तब तब यहाँ की वृथा सुख समृद्धिशाली रही।
इस कथन का प्रत्यक्ष अनुभव कतिपय राजाधारा अहिंसा-प्रभाव
का दिग्दर्शन करते हुए पाठकगण आगे पढ़ेंगे।

साधारणतः म० महावीर की अहिंसा को लोग इनका व्यापक
नहीं जानत है, परन्तु यह अज्ञान का फेर है। उस गेज एक
अंग्रेज विद्वान् श्री हेरम महोदय (Rev H Heras S J)
न पत्थर पर लिखी हुई एक धीर गाथा पढ़ी। उस में लिखा था
कि ‘सेनापति वेचप्य न कोङ्कणके युद्धमें अ-ङ्गी पीरता दिलाई—
सेकड़ों कोङ्कणियों को तलवार के घाट उतार दिया—फलतः
उम स्वर्ग-सुख नसीब हुआ और जिनन्द्र मगधान् के चरणों की

* ‘दीनाभुद्वाग बुद्धि काष्ण्य कण्ठाधनाम् ।’

निकटता मिनी* ।' यह उपहार हम जैन मेनारति को मिला पड़ कर उक्त विद्वान् आश्चर्य में पड़ गये । यह समझे, एव जैनी ने यह एक अनोखा काम किया । किन्तु इसमें अनायासन कुछ भी नहीं है—सैनिक काम तो जैनी का प्रथम धर्म है, चाहे लौकिक कर्म हो और चाहे परमार्थ का । यम, वैश्व १ भी यही किया । उसके देश पर लगानार आक्रमण करके कोङ्कणी गंग और धर्म-दोना का नाश करन थे । यह उनका मदान् अत्याचार था । इस अत्याचार को मेटन के निध वैश्व उमने मुक्त मा-उन्हें चीर गति प्राप्त हुई । यह सब जैनी य-किर मना उन्हें क्यों न जिनम्भ भाषान की शरण प्राप्त हो ? यह अकले ही तेम चीर महो है—

* हाईली जैन भाषा दी मीपद सोलहरी भा० १० पृ० १५

इसी १४वीं शताब्दि में विजयनगर हिन्दू साम्राज्य के सामंत राजा हरिहरराय द्वितीय थे । इहाँ क मेनारति बैचप थे । बैचप जैनता ॥ उपासक बाने चीर थे । उनका कु-ही बीरों की सान था । विजयनगर साम्राज्य के अधिपति पुकराय वण्ण के दण्डनायक बैच उनक सितमह थे । मानना उनक पिता और जानकी उनकी माता थी । इसाप उनका छोटा भई था । वह भी अपने बड़े भाई की तरह दिग्वर चीर था और साथ ही कमलान का भी राजा था । इसपर ने संनृत भाषा में 'नानाश नमन्त्र' नामक चीर ग्रन्थ रच था । मन्त्र होता है, अपने बड़े भाई बैचप के वीरगति प्राप्त करने पर इसाप विश्व नगर साम्राज्य के सेवार्ति हुवे थे । सन् १३८० ई० में हरिहरराय ने कोङ्कण प्रदेश पर चाका बोध था और उस मद्र में ही वीर बैचप काम आवे थे । वीर बैचप के पदभूषण प्राणों की आहुति का यह सुख निकल था कि मुल्गनल कोङ्कण प्रदेश की ओर भागे । इस दिग्ग और बैचप की वीरगति का वणन करने वला एक वीरगल डोलोने निर्मित कराया था, जिसका वणन 'एपीप्रियाटनीटका' (Ep Car VIII 152) में लिखा है । इसाप ने विजयनगर में एक 'कुमुनिनल्लय' नामक मंदिर बनवाया था और गोममे वर हीर्य आदि को दान भी दिया था । (१) सो जैनसिन्धुस सग्रह, मा० प्र० भूमिका पृष्ठ १०४)।

उन जैसे अनेक जैन-वीरों के नामों और कामों का पता भाज्य इतिहास को है !

किन्तु म० महावीर की अहिंसा का धार्मिक चमत्कार तो उसके 'महापूत' रूप में है। उसका पालन भी अगणित वीर कर चुके हैं। ये सबमुच महावीर हैं। ये मन-वचन-काय हैं पूर्ण' अहिंसा धर्म का पालन करने हैं। अपने मार्ग का मोह भी उन्हें अपने धर्म में विचलित नहीं करना। आतंकियों के साथ ही महारों को यह नुस्खा सहन कर लेते, किन्तु सत्य और अहिंसा पर अडिग रहेंगे। महावीर स्वामी १ स्वयं स्त्र के उपसर्ग को सहन करके यह आदर्श उपस्थित किया और फिर भी अम्बुद्वार, मेढ सुदर्शन आदि अनेक वीरों ने उसकी व्यवहारिकता को सिद्ध कर दिखाया। और आज सामूहिक रूप में उसका चमत्कार म० गांधी दिख रहा है। यह जैन अहिंसा का प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण है। म० गांधी का अरुन सिद्धान्त का निर्माण में सत्य में अधिक सहायता जैन कवि रायचन्द्रजी ने मिली है, यह बात यह स्वयं प्रगट कर चुक है०। अस्तु, यह स्पष्ट है कि म० महावीर की अहिंसा किनना व्यापक, महत्त्वशाली और व्यावहारिक है। किन्तु यहाँ पर यह दख लेना अनुचित नहीं है कि म० महावीर के पहले मार्ग में अहिंसा का क्या रूप था ? अस्तु,

* सभापति की देशियत में महमदाबाद की राजचंद्र गजेली ने समय महाभाजी ने कहा था—यूरोप के सब ज्ञानियों में मैं राजस्थान की पन्ती अली का और रत्निक की दूसरी अली का विद्वान समझता हूँ पर भीमू राजचंद्र भाई का अनुभव इन दोनों से भी बड़ा 'बड़ा था' और भी कहा है 'अनके विषय में मरे गहरे विचार हैं। मैं भित्ति ही बरों से भारत में धार्मिक पुरुष की शीघ्र में हूँ परंतु मैंने ऐसा धार्मिक पुरुष भारत में अब तक नहीं देखा जो भीमदू भाई राजचंद्र के साथ प्रतिस्पर्धा में लग सकें।

भ० महावीर के पहले भारत में अहिंसा !

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु मर्षदा ।

अस्तेनश्चनन प्रोक्ता अहिंसा परमर्षिभिः ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता ।

महावीरस्वामी के पहले दुय वाइसये तीव्रकर श्री अरिष्टनेमि के समकालीन श्रीरुष्ण महाराज कहते हैं कि 'मन, उचन और कर्म से सर्वदा किसी भी प्राणी को किसी भा प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाना इसी को महर्षियों ने अहिंसा कहा है ।' अतः यह मानना पड़ता है कि भ० महावीर ने पहले भी भारत में अहिंसा धर्म का अस्तित्व था । किन्तु यह कब था और कैसा था ? यह जान लेना आवश्यक है ।

भारतीय साहित्य में वेद प्राचीन ग्रन्थ मान जात है । उनमें भी ऐसे उल्लेख मिलते हैं, जो उस समय भारत को अहिंसा प्रधान देश प्रमाणित करते हैं । ऋग्वेद में राजसूय और मास-मन्त्रों को ध्याप दिया गया है*, जो अहिंसा व महाय का परिचायक है । और 'यजुर्वेद' (१८३८) में स्पष्ट कहा गया है कि

* अथर्व (१०८७१६) में उल्लेख है कि 'मित्र' को 'यकि' पशु के मांस में अपने को अश्विज बनाता है अथवा छोटे या मानव शरीरों के मांस में, तो उनका सिर फोड़ टांगे ।' एक गृह अभिषेक श्रावना की गई है कि 'हे अग्नि ! महा मन्त्रों को मर और ऊँचे अपने मुख में रख ।' (अथर्व १०८७१२) । अन्यत्र यह भी कहा गया है कि "अश्वकणा सततं रक्षित हो ।" (अथर्व १।११।५) । राजसूय और मास मन्त्रों को ध्याप देने का वैदिक उद्देश्य विद्विक्कम मा० की पुस्तक "हिन्दू मान्योग्रन्थों" पृष्ठ २७ पर दिया हुआ है ।

“समस्त जीवित प्राणियों को मैं मित्र की मानि समझाये मे देखूंगा।” इसके साथ ही ‘अथर्ववेद’ की प्रथम क्रिया भी इसही प्रकार की गिरी देनी है :—

‘ये त्रिपदा. परियन्ति विरम्भाणि विघ्नतः ।

वाचस्पतिर्लातेषा तन्नो अयद्दातु म ॥ १ ॥’

अन्वयार्थ—(य) य (त्रिपदा) त्रिषु जलस्थलान्तरिक्षेषु सायद्धा (विरम्भरूपाणि विघ्नत) अनक विघ्न शरीराणिधारयतो माना जन्मय (परियन्ति) मयत्र चर्मा न (नयाम्) जनस्थलान्तरिक्षचराणां विविध जीवानाम् (नय) शरीराणि (यन्ता) यलवान् भ्रेष्ट इति यावन् अथवा (यन्ता) यन्तान्कान्ताभ्यायनेति यावन् (वाचस्पति) वेदवाण्या पानका विद्वात् (अत्र) न हिनस्तु किन्तु (म) मा प्रीणयन्तु (स्थानु) पुण्यान् । भावार्थ—महाशारदय को जगद्देवता जीवान् वाचस्पति.- “सर्वेश्वर्यैककारणामूनार्यै मन्त्रानय विद्वद्भिः सर्व उन्नय. सदा रक्षणीया न च तेषु केचन हिनसीया ।”

भाव यह है कि समस्त पृथ्वी, जल और आकाश में बहने-धाले विविध प्रकार के जीवित प्राणी जो इस संसार में घूम-लगा रहे हैं उनको वेदा का ज्ञान अथवा वेदा में भ्रष्टा रहने वाला व्यक्ति कभी न माग । बल्कि जो मनी (देवता) की खुशी चाहे वह सदैव उनका प्राणा की रक्षा करे । अतः वेदा का इन उद्देश-रणां में स्पष्ट है कि यहाँ एक अत्यन्त प्राचीन काल में अहिंसा धर्म की प्रधानता रही है ।

जैनशास्त्र भी वेदा की इस भावना का समर्थन करते हैं । उनका कहना है कि इस कल्पकाल में अब मोक्षभूमि का अभाव और कर्मभूमि का प्राबुभाव यहाँ दुःखा-लोभा को परिधम करके

[illegible]

विष्णु एव सर्वत्र व्याप्य विष्णु एव सर्वत्र दृश्यमानः । एवम् एव सर्वत्र ।

[illegible]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीशिवाय नमः ॥
श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीशिवाय नमः ॥

मध्यममार्गानुसारं तत्र विद्यमानं सर्वं एक दिग्गदीश्वरं
 धरति । अत्राप्राप्तं च प्राप्तिपर्याय-पलेभूतं सकललोको-
 मायं कल्पवृक्षं धारति । परमादिष्टं दृष्ट्वा धर्मनामं विदधति ।

[illegible]

यह पवित्रता नष्ट कर दी। उन्होंने वेदों के नये-अर्थ लगाकर ही सत्यायन किया, यन्त्रि नये-मन्त्र और शास्त्र भी रच लिये। उनके अनुसार जीर्ण की हिंसा करना एक धार्मिक कृत्य बन गया। * अहिंसा की पवित्रता नष्ट होगई और तब से अहिंसा और हिंसा दोनों ही मान्यताओं के लागू भारत में होने चले आये। वेदा में

* म० शीतान्ताय क तीर्थ से यह गाने आरम्भ हुए और मगवान् मुनि सुप्रतानाय क समय से वह पूजल को प्राप्त हो गई। इसही समय में हिंसामय यज्ञों का प्रचार हो गया। दशो "उत्तरपुराण" पृ० १०० — "शीतलेशस्य तीर्थान् सद्धर्मा नाशमपिवा । यस्तुश्रोतुवरिष्णुनाममायात्काल दापत" । — "इत्यर्थाय गृहात्स्थाक तत्पुस्तकमजाचयत् ॥ ८३ ॥ इत्थ तैर्नेमित्तंन लम्बायसरमुत्पथ । मुहुर्गालायनंनोक राजातद्व ह्ममान ॥ ८४ ॥" और पृष्ठ ३५१-३६० में यह विधान का वर्णन देखा) वाल्मीकीय रामायण भी इस बात का सन्देश करती है। उसमें प्रष्ट है कि 'हिंसक यज्ञ का जोर इसी समय हुआ। (In the epic age the sacrifices were very popular institutions' Hindu Ethics p 445) किन्तु उसी 'रामायण' में यह भी उल्लेख है कि "जब रामचन्द्रजी 'राजसूय यज्ञ' करने की तैयारी हुए तो भरत ने उन्हें रोका और कहा— 'तुम सब ॥ पशुओं और वन्य क रक्षक हो, अतएव तुम्हारा इस यज्ञ से क्या भला होगा ? इस प्रकार क यज्ञों द्वारा सब ही राज्यसंस्था को प्राप्त होते हैं।' " ('When Rama proposes perform to the Rajasuya sacrifice, Bharata says, 'Thou art the refuge of all animals & the universe : Therefore, of what use is such a sacrifice unto thee? In such a sacrifice, all the royal families meet with ruin' Ramayana, VII 83 7-20 " quoted in the Hindu Ethics p 446) जैन 'उत्तरपुराण' स भी स्पष्ट है कि उस समय मगध कीशक आदि के लोग अहिंसा धर्म के हिमायती थे। (पृ० ३३६)

भी हिंसा का विधान कर दिया गया। जो अमल मनु सर्वदा अहिंसा के गोनक रहे * और अमल उनका छाप उनके विरोधी वैदिक श्रुतियाँ पर पड़ा। † म० अहिंसासिद्धि आरम्भ होकर म० महावीर के बाद तक यहाँ अहिंसा का नामा पुनश्चान हुआ। यहाँ तक कि इस समय के नये नये वैदिक और बौद्ध ग्रन्थ भी अहिंसा के गीतों में भर दिये गये हैं।

यह बात कवन जैनग्रन्थों में ही नहीं कहा गई है, बल्कि हिन्दू 'महाभारत' और बौद्ध ग्रन्थों में कहा पड़ा है। 'महाभारत' (शान्ति पर्व ३३९, अ०) में लिखा है, "अथ कुरु दया न उत्तम श्रुति ब्राह्मणाः स कदा किं शब्द 'अन' का अर्थ बकरा लगाना चाहिये। श्रुतियाँ ने इनका उत्तर इस भाँति दिया कि वैदिक श्रुति यह घोषणा करती है कि यह कवन भीजा (अनाज) द्वारा ही किया जाता है, इन्हें को 'अन' कहते हैं। बकरा को बध करना तुमको उचित नहीं। किन्तु राजा यशु न दया का पक्ष लेकर हिंसक मन की युधि की। यद्यपि यह स्वयं शास्त्रनियमों द्वारा एक अवयव यशु कर चुका था। † मधुसूदन इन बातों का मतलब पशुओं का होमना नहीं था—उनका मतलब शत्रुओं का निग्रह

* जैन धर्मन वैदिक धर्म में मान्य है, यह बात हम अवश्य प्रमाणित कर चुके हैं। (देखो "भारत का बनाव" की प्रस्तावना)

† लोक्रमान्य शिखर ने यह बात निम्न शब्दों में स्वीकार की थी —

"अहिंसा परमो धर्म — इस उदार सिद्धान्त ने आश्रय धर पर चिर स्मरणीय छाप मारी है। पूर्वकार में यज्ञ के त्रिरे अमल्य पशु हिंसा होती थी, इसके प्रमाण 'मेषदूत का व' आदि अनेक ग्रन्थों में मिलते हैं। , परंतु इस घोर हिंसा का आश्रय धर्म ही विदाई न जाने का श्रेय जैनधर्म के हि मे मे है।"

— "जैन विद्वानों की सम्प्रदाय" पृ० ८

करना था। 'महाभारत' में यही कहा गया है कि "इन्द्रिया को पशु बनाया, धर्मको वेदी बनाओ और अहिंसा की आशुति दो। ऐसा आचरण मैं (रुष्ण) सदा करना हूँ"। "शतपथ ब्राह्मण" और "मनुस्मृति" में जो यज्ञ का स्वरूप बताया गया है, वह भी अहिंसा धर्म का पोषक है। उनमें यही प्रमाणित होता है कि मूल में वेदा के मंत्र अहिंसा धर्म के ही प्रचार थे। किंतु उपरान्त उनकी अलंकरण भाषा में अनुचित लाम उठाकर और मायावी लोग ने उनके आधार में हिंसा का प्रचार कर डाला और मांस भक्षण का रियाज में चल पड़ा, किंतु उपरान्त अन्तिम

X शालिष्व — "सामयाम" पृ० १२०

१ सामयाम, पृ० १२५-१२६

२ अदुत च हुत जेष तथा प्रदुतमेष च ।

प्राह्म्य हुतं प्राशितं च पचयश्चानं प्रचक्षत ॥

जषी हुती हुती दाम प्रदुती मौनिमी वली ।

प्राह्म्य हुतं छिजाप्रयार्थी प्राशितं पितृतपणम् ॥

भाष्य—अग्नि ने पांच प्रकार के यज्ञ बताये हैं—(१) अदुत, (२) हुत (३) प्रदुत, (४) प्राह्म्य हुत, (५) और प्राशित । यह क्रमशः दैनिक, पाक्षिक, मासिक आदि होनों के करने के योग्य हैं, । नये दीन दुखियों और पशुओं को भोजन कराना तथा ब्राह्मणों को दान दिया जाता है । इनमें पशु हिंसा नहीं की गयी । (See 'An Essay on Cow Protection' by Pt Dwarka Pd p 16) ।

३ ऋग्वेद में कहा गया है कि "वह यज्ञ जो पशु का मांस, घोड़े का मांस और मानव शरीरों का भक्षण करते हैं उनके लिए मित्र, पोट्टे टालो" । (१०।८७।१६) अथर्ववेद अ० ६ सूक्ता ७०-१ में मांस, सुरापान आदि अमध्य बताया गया है । इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि भारत में पहले द्विज लोग—आर्य मांस का भक्षण नहीं करते थे । उनमें यह रिवाज स्थापित करने से बच पड़ा है ।

तीर्थचरो के उद्योग से अहिंसा धर्म का निष्ठा मारन में एक बार फिर जम गया था। यही कारण है कि 'ऐनरय ब्राह्मण (६।८) और अन्य हिन्दू ग्रन्थों में पहले हिंसक यज्ञों का होना और नद-नन्तर उन्हीं का वनस्पतिमय अहिंसक यज्ञों में परिणत हो जाना का उल्लेख मिलता है।

हमारे उक्त कथा का समर्थन बीडू शास्त्र 'मुत्तनिपात' के सातवें 'ब्राह्मण धम्मक बुत्त' में भी मिलता है। उसमें लिखा है कि "प्राचीन ब्राह्मण अग्नि इन्द्रिय निग्रह में इत्तमिस्स समाशील थे। उनके पाषाण इन्द्रियों का विषय दूर था। उनके पास केवल आत्मध्यान का अपूर्व कार्य था। यह लाभ चायन, कपट, धी और तल उचित रीति से इकट्ठा करके उन में यज्ञ करने थे। वे यज्ञ में गड्ढों को नहीं हलाने थे। एक माहसा और धमनिष्ठ ब्राह्मणों का अस्तित्व अवनक रहा तब तक यह जानि फलमा फूलनी दशा में रही, परन्तु उपरान्त उनमें परिवर्तन हो गया। राजाओं के ऐश्वर्य और सम्पत्तिका उत्कर्ष उनका आ लनवाया। उन्होंने तब इस संबंध में श्रुतार्थें रची और राजा आज्ञाएं न धन-सम्पत्ति का यज्ञ करने का कहा। पत्न्यामन, अश्वमंथ, पुश्वमंथ आदिकिय गये और ब्राह्मणों का द्यूष दान दक्षिणा मिर्ची। इस तरह दयता, वित्तुगण आदि गिन्ना उठे कि यह घोर अभ्याय है। इस में रोग बढ़े हैं। यह अभ्याय प्राचीन समय से चला आ रहा है। यह ब्राह्मण धर्म से न्युत हो गए हैं" *। सारांश यह कि म० बुद्ध के समय में भी ऐसे-यज्ञादि में हिंसा करनेवाले ब्राह्मणों का अभाव नहीं था, किन्तु उपरान्त हिन्दू क्रियाएँ न जा रचनाये कीं उनमें

* The Sutta Nipata (4th century B C) S B

अहिंसा धर्म को प्रधान पद दिया * । यह जैन तीर्थंकर आदि अहिंसा धर्म प्रचारकों के मनुद्योग का फल था ।

स्थानामात्र के कारण उस व्याख्या का विशद विवेचन करना असम्भव है, तथापि म० महार्षीर में कुछ काल पहले के धार्मिक घाताचरण का दिग्दर्शन कर लेना उचित है कि 'सामायणकाल' में जिन हिंसामुद वेदिक क्रियाया का प्रचार हो गया था, उनका प्रति कार जैन तीर्थंकरोंके अतिरिक्त स्वयं वेदिक क्रियों न भी किया। विदेहके राजा जनक, राजपुत्र भजातशत्रु और अपिवाहपदस्य इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। इन सब का अस्तित्व म० अरिष्टनेमि के समय में अनुमान किया जा सकता है। किन्तु इनके कुछ समय बाद ही आसुरी आदि क्रियामय फिर एक बार हिंसक क्रियाकारण को जामन करत हुय मिलत है * । म० पार्श्वनाथजी के समय में सचमुच एक वेदघ्न जाति के दगन होते हैं। एक ओर यह शासक परिग्राहक और उनके मन के लोग थे जो हिंसामुद यज्ञ और हठग्राहक उपासक थे और दूसरी ओर ये धर्मण साधु थे जो अहिंसाधर्म को प्रधानता देना चाहत थे। इस जाति का ही यह परिणाम था कि एक ही सम्प्रदायमें दो भिन्न मतों को मानने वाले लोग मिलते थे। उदाहरणन आजीविक सम्प्रदायको लीजिये। इस सम्प्रदायकी उत्पत्ति यद्यपि जैनधर्म में हुई थी और इसका मुख्य आचार्य मन्त्रालि शाशाल मन्त्र एक

* महाभारत (श्री० १०, २५ २८) में अहिंसा फलन करने के भाव का पत्र एक हजार यज्ञ करने इतना मिला है। मनुस्मृति (१।४१), हिन्दू पद्मपुराण (५० २८०), भागवत (७।११३ १९), वैशेषिकसूत्र ७, वसिष्ठपुराण (८।१३२) वमपुराण (५० १६) अहिंसामुद उपरक्ष से भर हुए हैं।

१ देखो हमारा "मन्वान् पार्श्वनाथ" पृ० ८२-९०

समय जैमुनि थे^१, किन्तु फिर भी वह अपने अनुयायियों को पूर्ण अहिंसक न रख सके। अन्ततः वह मछली आदि को मोजन में ग्रहण करना विधेय समझने लगे थे^२। यह समय का प्रभाव था। वेदिक क्रियो एवं अन्य श्रमणा न इस समय अग्रगण्य हों। वेदिक मान्यताओं की रक्षा के निय उद्योग किया था। यह लोग फट्टर पुरोहित सन्दाय में अलग होकर इस सुधार को करने के लिये उद्यत हुए थे। इन में 'प्रश्नोपनिषद्' के अधिष्ठाता पिप्पलाद 'मुण्डकोपनिषद्' के रचयिता भारद्वाज, 'कठोपनिषद्' के प्रचारक नविकृतस् प्रभृति क्रियों न वेदिक मान्यताओं में ऐसा सुधार किया था जो भ्रान्त, यत्न, अहिंसा और नैदानिक प्रौढता का पोषक था^३। इनके विपरीत पूर्णशायर, पटु काल्यायन, अजितकशक्यलि आदि श्रमणगण वेदिक मान्यताओं को अपने मनोनुकूल सुधार पर पगुहिंसा और मांस भोजन की पुष्टि करते थे^४। पूर्णशायर 'मगर-गीता'^५ की तरह कहता

१ पू. पुस्तक पृ० २१४-२१५

२ 'लोमहस्ताक्षर' में यही कहा है (आजीरिक्प-उज्ज प-उजित्या अचेलको अक्षोमि महाविन्दम-जनो अक्षोसि मच्छगोम-यादीनि परिमुञ्चि १) किन्तु 'महासाहनाद सुत्त' में उनका मो-न बन पड़, मूँग, तिर और तटुल दिया है। (Ajjhal १५, Pt I, p 55)

३ "मगलान् पाद्वनाथ" पृ० २८८-२९०

४ "म० महावीर और म० बुद्ध" पृ० १९-२८ और "म० पाद्वनाथ" पृ० २९१-२९५

पूर्णशायर आदि श्रमण म० महावीर के साथ समवर्ती थे।

५ निम्नलिखित श्लोक में आत्मा को अवश्य जोर अमर बनना कर हिंसक शुद्ध करने का उपदेश मगलगीता में दिया गया है -

अतएव न इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।

था कि आत्मा एक अमर और निगुण ड्य है, इसलिए किसी जीव को मारने में व्यक्ति को पुण्य पाप नहीं लगता । पशु-पक्षी का-त्यायन की मान्यता भी कुछ इसी दगसी थी । वह मानता था कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सुप्त, दुःख, और जीव वस्तुओं के मिलन विरुद्धन में जीवन का व्यवहार है । इसलिए कोई किसी को विशेष हानि नहीं पहुँचा सकता । पर, पशु-पक्षी व निगुण भी किसी जीव को मारना कुछ महत्त्व न रखता केवल व्यवस्थित वस्तुओं का अलग कर देना था, जिस क्रिया में पुण्य पाप का भय नहीं था । और अजिन न यद्यपि यज्ञ आदि अग्नि वेदिक क्रियाया का घार विरोध किया था, किन्तु उहान पुनर्जन्म और आत्मा के अस्तित्व में इनकार करके प्राणियों की हिंसा करना उचित मानी

अनाशिनोऽहमथय तस्माद्युषस्य मास्त ॥ १८॥२॥

अथ - "हे मास्त ! जो आत्मा हम शरीर का रागी है, वह निश्च, अविनाशी और अमर (यान् में भी नहीं आन योग्य) है तथा उसे प्रात होने वाले शरीर नाशवान और अनिम है । इसलिए हे मास्त ! तुम मुझ करो "।

य एनं घेति हतारं यश्चैन मन्यत हतम् ।

उमी नौ १ विज्ञानानां नाय हन्ति न हन्यत ॥ १९ ॥

अथ - " १ इस (किसी को) मारने वाला समझता है, या ऐसा समझता है, कि यह (किसी से) मारा जा है, वे दोनों ही भ्रमाली हैं । यह आत्मा न तो मरता है और १ माया -ला है " ।

गीता के दूसरे अध्याय में उपरोक्त श्लोकों के अर्थ भी कुछ मत का प्रतिपादन किया गया है । १ शक्तिशुद्ध नहीं है, क्योंकि आत्मा के अमर और अजन्म होने पर भी शरीर का शरीर यदि प्राण उसे न में कट होता है और प्राणक मन में हिंसक भावों का - ॥ होता है । अतएव एक दया प्रेमी को किसी प्राणी की हिंसा न करना ही उचित है । १० महावीर ने गृह्य के नियम धर्म भाव में मुझ करने का विधान करत नये भी अहिंसाधर्म को पूर्णत प्रतिपादा था ।

थी। इन लोगों के उपदेश का ही यह प्रभाव था कि जनता मास लिप्सा में फँसी हुई थी। यहाँ तक कि ऐसे तापस भी मौजूद थे जो वर्ष भर के लिये एक हाथी को मास कर रख लेते थे। * सागरा यह कि म० महर्षि के जन्म समय गर्म और शरीर ठोना के लिये हिंसा करना लोगों में प्रचलित था।

अब कहना होना है कि म० पार्श्वनाथजी के चर्मोपदेश के कारण ई० वर्ष ८वीं शताब्दि में भारत में जो धार्मिक क्रान्ति जमी थी, वही म० महावीर द्वारा पूर्ण पञ्चायित कर दी गई और उसमें अहिंसा एवं समता भाव को प्रधान पद मिला। आजीविक और जीव संप्रदाय के कार्य भी इस सफलता में कारणभूत थे—उनके कारण ज्ञानार्णव बहुत कुछ बढ़ा और दया का भाव ने श्रोतमोह हो गया था। हाँ जैनों संप्रदायों में अहिंसा न किन्हीं सीमा तक अपना चमत्कार दिखाया, अब आगे यह देना होता ही उचित है। उपरान्त म० महावीर ने उन्हें चर्मसीमा पर पहुँचा कर अहिंसा धर्म का चमत्कार दिगन्तव्यापी बना दिया। फलतः सब ही मत-प्रवर्तकों को अहिंसा-धर्म चक्र के सामने नत मस्तक होना पड़ा।

(३)

आजीविक संप्रदाय में अहिंसा।

आजीविक संप्रदाय का जन्म म० पार्श्वनाथ के तीर्थ का साधुआ में भ हुआ था। आजीविक वह ज्योतिषशास्त्र को अपनी आज्ञाचिन्ता का साधन बताने के कारण कहनात थे। उनके मुख्य प्रवर्तक मकवल्लि गोगान थे, जो एक समय जैन मुनि

रह चुक थे*। इस अवस्था में आर्जीविक संप्रदाय में अहिंसाधर्म का स्थान मिलता अनिवार्य है। किन्तु क्या मैं यज्ञ की बात यह है कि आर्जीविका की प्रधानता का सपथ में पार्श्वनाथ के पश्चात् और म० महावीर के कवली होने के पहले पहले रहा है, और इस समय देश में वैदिक हिंसाधर्म-काण्ड का महत्त्व नि शेष नहीं हुआ था। इस दृश्य, रात्र, काल, माघ में आर्जीविक विज्ञान का जन्म हुआ था। उनका नियम एक ओर तो वैदिक मन का यज्ञस्थ धर्म और उनका यज्ञकाण्ड था, जिस के निमित्त मे लोगों की मांस भोजन छाग जिह्वा सम्पटना का छूट थी और दूसरी ओर भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा प्रकृति अहिंसामयी निवृत्ति मार्ग था। और यह हम पहले ही बिना चुक है कि म० पार्श्वनाथ के धर्मोपदेश के कारण उस समय एक धार्मिक क्रांति हा गई थी। फलतः आर्जीविका न यज्ञस्थ धर्म में सुधार कर के अपना सिद्धांतों का बहुत भाग जैनधर्म के दृष्टिवाद् अंग के पूर्व नामक अंश से ग्रहण किया *। ये हैं कि उनका निष्ठाता की यज्ञान वाला आज कार्य भी प्रत्येक उपलब्ध नहीं है। उनके विषय में चाहिए बहुत ज्ञान, जो भी प्राप्त है वह कल ज्ञान और बौद्ध शास्त्रों में है। अस्तु,

आर्जीविक का मुख्य सिद्धांत 'नियतिवाद' या 'परिणामवाद' था। 'नियति' या 'परिणाम' में उनकी मतभेद निश्चित प्रात्य (tatic) में था। वह जगत् के प्रत्येक कार्य का निश्चित मानते थे। 'नियति-पथाय-मात्र'—इन तान के अनुसार वह जीजा

* हमारा 'भगवान् पार्श्वनाथ' पृ० ३२२-३२०, "म० महावीर" पृ० १७३ और "वीर" खप ३ अंक १२-१२

× हमारा 'संक्षिप्त जैन इतिहास' भा० १ खंड १ पृष्ठ ७०-७३

को सत्सार में ध्रुमण करने बताते थे *, जिसमें छे शाम्भन और परस्पर विरोधी वस्तुयें—लाम-अलाम, सुख-दुख, जीवन-मरण मुख्य थी †। लोक में हीन दशा को प्राप्त जोय, एक कमल-पत्र पर पड़ा हुआ जलजिदु भी नियत समय में उन्नति करता हुआ चरम सीमा को पहुच जायगा, जो उत्कृष्ट रूप में चौगसी लाल महाकल्प काल है। इस काल में जाय को दययानि, जइयानि, नट्योनि में सात-सान जमातर पंगु करने हात है, जिसके अन्त में निश्चित रूप में वह चरमात्रति का प्राप्त हो जाना है।
 † वस्तु, जो परिणाम में सब बानें सत्य निश्चित है—वह स्वयमेव होकर रहेगा—तब ज्ञान को महत्व देना, कम करना और पुण्य-पाप मानना निरर्थक है ‡। बौद्धों के 'दीपनिकाय' ग्रन्थ में आजीविना के इस 'नियतिवाद' का विरोधन निम्न शब्दा में हुआ मिलता है —

“एव पुत्ते भन्ते मक्खल्लिगासालो मप्प एतद् अबोच ‘नत्थि महाराज हेतु नत्थि पचयो सत्तान सम्भोसाय, अहेतु अपचया सत्ता सकलित्सन्ति। नत्थि हेतु, नत्थि पचयो सत्तान विमुद्धिया, अहेतु

* 'दीपनिकाय' “नियति-सम्प्रदाय-परिणाम” (P T S) भा० १ पृ० ५३ Fate=निश्चित Specious=पथाय Nature=भाव

‡ सबसि पाणण्ड सबसि भूवाण्ड सबसि गोवाण्ड सबसि तत्ताण्ड इमाह सण्णिमणिआह वा तण्डाह वागरहत्त टाभ, अणम, सुह दुख, त्रिदय, मरण।
 —मगवतीसूत्र, सं० ११ उद्देश २

भावार्थ सब प्राण, सब भूत, सब जीव, सर्व सत्ता-इनके जीवन है शासन और विरोधी वस्तुओं से चिह्नित है ज्योंही लाम-अलाम, सुख दुख, जीवन मरण।

† यह बात मगवतीसूत्र, (सं० ११) और 'दीपनिकाय' (१।१४) से स्पष्ट है।

‡ दीपनिकाय (P T S) भा० १ पृष्ठ ५२ ५४

(principle) जो पहले से मौजूद हो। उनकी शुद्धता अहेतुमय और बिना किसी पहले में स्थित वस्तु की रची हुई है। उनकी उत्पत्ति के लिये वहा कुछ नहीं है जो व्यक्तियों के चार्ित्रिक फल रूप हो दूसरों के कार्यों के परिणाम रूप हो अथवा मानवी प्रयत्नों का फल हो। उनका प्रादुर्भाव न वीर्य में और न प्रयत्न में होता है, तथापि न मानुषिक त्याग में और न मानुषिक शक्ति में। प्रत्येक सत्तात्मक प्राणी, प्रत्येक काँड़ा मकोड़ा, प्रत्येक जीविन पदार्थ चाहे वह पशु हो या वनस्पति, वह सब आन्तरिक (Intrinsic) शक्ति, धीर्य और भावना में रहित है, किन्तु अपने परिणामार्थीन आवश्यकता में फैला हुआ वह छै प्रकार के जीवनों में सुख दुख भुगनता है। इस तरह सत्सार में परिणामार्थीन भटकता हुआ व्यक्ति चाहे वह मूर्ख हो अथवा पंडित हो नियत महाकर्णों के उपरान्त समान रीति में दुःख का भोग करता है।

अतः यह स्पष्ट है कि आजीविक मन में जीव प्रारम्भ के हाव में पिका हुआ एक कठपुनता है—वह शक्तिहीन है—वह चाहे हानी और चाहे अज्ञानी अपने आप नियतकाल में दुःख का भोग करेगा। इसीलिये आजीविक गण्य कर्महीन होने का उपदेश उक्त में और पुण्य पाप कुत्र भी नहीं मानत थे *। ये अज्ञान मिथ्यात्व के प्रचारक थे। उनकी मान्यता को ध्यान में रख कर अब यह जान लेना सुगम है कि आजीवियों ने अहिंसा तत्त्व को वहा तक विकसित किया था।

* पातञ्जलि ने अपने भाष्य में उनके विषय में यही कहा है —

“मस्करोऽस्यास्तीति मस्करी परिव्राजकः । किं तर्हि ॥ अहं कर्माणि मा एत कर्माणि शान्तिर्व ध्येयं न्याहन्ते मस्करी परिव्राजकः ”

भावार्थ—मस्करी परिव्राजक यह उपदेश देते थे कि कर्म मत करो—कर्म मत करो—शान्ति ही वांछनीय है।

आजीविक मनुष्य-जन्म को परमोत्कृष्ट मानते थे, किन्तु उसे वे 'नियति' के आधीन प्रगट करते थे। इसीलिये मनुष्य का मुख्य कर्तव्य यह यही ठहराते थे कि वह 'नियति' अथवा 'परिणामवाद' के अनुकूल चले, जिसमें दूसर्ग क स्वत्वों का अपहरण न हो, म्याय और वियेक जागृत रहें, जीवन पवित्र हो, जीर्वा की हिंसा न की जा सके, आयश्यकतायें कमनी हों और जिनपद की प्राप्ति हो १। मनुष्य-जीवन में आजीविकगण निश्चित रूप में साधु-दशा का होना भी मानत थे किन्तु आजीविक साधुओं के चारित्र के विषय में दो मत मिलते हैं। एक मत के अनुसार आजीविक साधु की नंगा रहना, ज्ञान न करना, अहिंसा का पूर्ण पालन करना और एकान्त में धास करना आवश्यक है २। दूसरे इस जीवन का उद्देश्य 'मज्झिमनिकाय' में निम्न प्रकार बताया गया है ३ —

“ सो तवो सो भीतो एको भित्तन के वने ।

नगो न चाग्गिम आमीनो, एमनाप्पमुतो कुत्तंति । ”

माथार्य—परमोत्कृष्ट उच्छाना और शीत को सहने हुए कष्ट-स्त में भवानक यना में रहत हुये वह मुनि नगा रह कर, किसी पाक्ष भाग भी नहीं-मात्र अभ्यन्तर की भाग है, सन्द के रज्ज्ज के उद्योग में है। सचमुच आजीविक साधु हर घर ईश्वरधर हार और उद्देश्य एक जैन मुनि के अनुकूल है। सन्द ही उनका मोक्षन भी सात्विक शाकाहार था। वन्दत, न्ग, निव हरे

१ दीपनिकय भा० १ पृ० ५४, अनुकूल=अनुकूल १८१—२६

आजीविकस भा० १ पृ० २६

२ वा बारब्बा, आजीविकस, भा० १ पृ० ५४

३ मज्झिमनिकाय भा० १ पृ० ७५

तन्मुख ही उनके भाजन के 'सम यदार्थ' थे, जिनका यह याचना क
क-म्यथ बना करके नहीं-ग्रहण करने थे । गृह, वस्त्र, वेद, धर्म
पितृ, और पिंडान, महसुन आदि वक्ष्य यह नहीं माने थे ।
पशुओं के शास्त्र-ज्ञान आदि भी नहीं छेड़ते थे और अपने
उपासकों को हिंसक व्यापार नहीं करने देते थे । इस प्रकार
जैन साधु के चरित्र में आजीविक साधु-जीवन का यह सादृश्य
इसी कारण है कि मूल में इस सम्प्रदाय के सिद्धांत जैनमन में
लिये गये थे, जैसे कि हम अन्यत्र निरूपित कर चुके हैं । किन्तु जैन
मन जैसा वैज्ञानिक सिद्धान्त आजीविक का होना के कारण
परिणाम यह हुआ कि गहिमा-मिहान्त उनके निकट यह साधु-
क रूप न पा सका, जो उसे म० महावीर के हाथों प्राप्त हुआ ।
'अब यह निश्चित है कि नियत काल के उपरान्त दुःख में मुक्ति
मिलेगी और पुण्य-पाप कुछ हैं ही नहीं, † तब संसार में रह
कर इन्द्रियजनित भोगोपभोगों का आनंद क्यों न लूटा जाय ?'
आजीविक सिद्धांत न उसने अनुयायियों में यह भावना पैदा
कर दी और इसमें उस समय का हिंसक मानागण आजीविक

† महावीर नाद गुप्त-आलोचनस भा० १ पृ० ५४ ११

" तन्मुखे मे दुर्वागम आजीविक साधनं भवति इष्यते अतः श्रवणं,
आभाषितं पुनर्गणनं वक्ष्यस्वपिचनं त० दृष्टवर्हि यन्ने बोधेति, सपरहि,
पिचवर्हि, फाडू लसुणवदमू विवर्ण, आगेति, पदि इत्यादि ।"

— भगवतीसूत्र पृ० १२०६

‡ 'मन्त्रिपण्डो नामक बौद्ध ग्रंथ में लिखा है कि "स ज्ञं मन्त्रिद ने मोक्षार्थ
स पूछा-अ ते कुर कम है या नहीं ? अ ते कुर कमो ना फर भी मिलता है या
नहीं ? मोक्ष ने उत्तर दिया-हे सत्तम ! अच्छे कुर कम भी नहीं है और
उनके फल भी कुछ नहीं है ।"

का सहायक हो गया। फलतः वे अपने अहिंसक जीवन में पतित हो गये। उनके साथ नगे उभर गये और एकलयात भी उनकी द्रिय रहा, किन्तु इन्द्रिय लिप्सा में वे मग्न हो गये। मङ्गरी आदि हिंसात्मक पदार्थों के मोचन में ग्रहण करने लगे और संयम में भी वे गिर गये *। मन्मथि गोग्राम ने अपने अन्त समय में चार पद पदार्थों का जो लिखित स्वीकार किया था, उसमें अनुमान किया जा सकता है कि आजीविका के निकट मद्य भी निषिद्ध नहीं रहा था। 'आठ अन्त की पाने (Eight Finalities) का गोग्राम के जीवन के विषय में कहा जाती है, उनमें अन्तिम पान (Last drink), अन्तिम गान (Last song), अन्तिम नृत्य (Last dance) और अन्तिम प्रेरणादायक गान (Last solicitation) भी हैं x। इतना तथा 'सूत्ररत्नाम' के निम्न अंगुलि यह स्पष्ट है कि अन्त में आजीविका के निकट अहिंसा और संयम को कोई स्थान शेष न रहा था—यह उनके परिणामवाद का दुर्फल था। 'सूत्ररत्नाम' में वर्णन है —

“गोग्राम ने कहा कि ‘जिम प्रकार तुम्हारे (जीना के) मतानुसार महावीर का शिष्यसमूह म चेरित हुआ पाप नहीं है, उसी प्रकार हमारे मतानुसार एक साथ जो वकायिहारी है,

* “आजीविका राज्य के अहिंसा अधिकांश अहिंसक रोगों की, परिवर्तित अहिंसक विकारों मनुष्य दिग्गम शिरो विष फलित, महाविकृत मोक्षों अहिंसक मनुष्योपयोगी परिशुद्धि।

—सूत्र १ पृ० ३९०

भाषा—“आजीविक परिणामक नन, भूत धूमरित एक विहारी, मनुष्य के पाप से मुक्ति की तरह मान्यमान होता है, उसका मोक्ष महा विकृत मठरी, गोबर आदि होता है।”

x आजीविक, भा० पृ० ३०१

कुछ भी पाप नहीं करता। यदि वह शीत जलका व्यवहार करना, चाफलो को खाना, आदेशिक भोजन करता और स्त्रियों के साथ सहवास करता है”।

“जैन मुनि अटिकन इस पर कहा कि ‘यदि यह मान है तो गृहस्थों और साधुआ में फिर अंतरही क्या रहेगा? यह अनन्त संसार में समल्य करेगा”। (सूत्रनाम पु० २ श्लो० ६)^१।

अतः यह स्पष्ट है कि अजीविक संश्रय में यद्यपि अहिंसा धर्म को स्थान मिला, परन्तु वह अपने लगर सिद्धान्त के कारण उसे पनपा न सका—समय की गति के साथ वह बह गया। म० महावीर जैसी सैद्धान्तिक अहिंसा के दर्शन उस में नहीं होते। हा, ‘परिणामवाद’ में साम्यवशात् जिन प्राणियों की रक्षा हो जाय वह अच्छा, वैसे अपने आराम के लिये यदि जीवा की हिंसा करना पड़े तो कुछ पाप पुण्य नहीं। और फिर अन्न जीव आदि सब पुण्यार्थहानि न कुछ है, तब हिंसा काहे की। यदा पर भला कहिये, अहिंसा कहा रही? उसकी तुलना म० महावीर की अहिंसा में क्या की जाय? अहिंसा का जो भी प्रभाव आजीवियों पर पड़ा, वह जैन अहिंसा का ही था, परन्तु वह अपने शिथिल सिद्धान्त के अनुसार उसे स्थिर न रख सक और उनके द्वारा जनता का कुछ भी हित नहीं हुआ। मकल्लि गोगाल एक पागल की तरह मृत्यु की प्राप्ति हुआ। उसको अपने किय का पड़नाया भी बहुत रहा। अन्त में उसने धर्म और कर्म दोनों ही तरह हिंसा का विधान कर दिया था, जैसे कि उक्त विवेचन से स्पष्ट है। बहुत करके इसी लिये म० बुद्ध ने उसे जनता का शत्रु कहा था। २

म० गौतमबुद्ध द्वारा अहिंसा का विकास ।

महाजालिगोशालु शाक्य-श्रमण गौतमबुद्ध व यद्यपि समझालीन थे, परंतु आयु और माधुष्य की अपेक्षा वह गौतम में पहले के दृढ़ते हैं अर्थात् म० बुद्ध के धर्म-चक्र प्रवर्तन के पहले ही आजीविक सम्प्रदायक नर्तकों का प्रसार जाना में था * और वह पहले लिखा आ चुका है कि आजीविक गण अस्तित्व हिंसा-रत हो गये थे । हिंसा, कुशाल, मद्य आदि व्यसन में उन्हें घुसा नहीं रही थी । यह दुर्गुण मात्र उहाँ में नहीं थे, बल्कि सामान्य मानवस्य भी इन में अछूत न थे । उनके निकट विवाह अपवा प्रेम करना, सोमरस के रस में मद्य का पीना और यहाँ में पशुधर्मों का होमना धार्मिक क्रम थे x । अब साधुधर्मों की यह हालत थी तब साधारण जनता की क्या दशा होगी, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है । पञ्चन म० गौतमबुद्ध और

पुनाराम् पि समनुपम्मासिंघो पथं बहुजनहिताय पटिपन्नो बहुजन सुखाय बहुना अनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय दयमनुस्सानं पथयिद्दिं मिक्खये मयं वणि मोउत्पत्तिं ।" (Ajjivikāsa, p. 20)।

* Historical Gleanings, p. 25-26

x-माम, मधु, मदिरा का प्रचार आर्य लोगों में था, यह बात ब्राह्मण ग्रंथों से स्पष्ट है । (Hindu Ethics, pp 443-467) पाण्डुरत्नय, आमुरी आदि मादण कफिण त्याग कर था में भी स्त्री, पुत्र धन, सम्पत्ति आदि भोगोपभोग की वस्तुओं को रक्ता बूझ नहीं समझते थे (व हिन्दू आर्य ही श्री बुद्धिष्टिक इन्डियन सिन्हासनी, पृ० १५३-२२५)

मगधान महारथी के लिये इस धानाधर्म का सुधाग्ना आवश्यक था। मान्यम ऐसा हाना है कि म० अग्निहोत्र के बाद मान में एकदम प्राप्तिपाद का दौरा होता है मया था। मगधा पार्श्वनाथ ने उसके प्रति योगों को मशहूर था कर एक धार्मिक प्रतिष्ठा को उभार दिया, जिसका पूर्ण विस्तार म० बुद्ध और म० महारथी ने किया। यह बाद रत्न का बात है कि म० बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार म० महारथी के सयज्ञ हान के पहले ही करना आरम्भ कर दिया था। अतः उक्त समस्त धर्म और धर्म दोनों ही दृष्टि में हिंसादि पापों को मिटा देने का क्षेत्र पड़ा हुआ था। निम्न लिखित पंक्तियों में यह दृष्टा का प्रचार है कि म० बुद्ध ने इस कार्य में कहाँ तक सफलता प्राप्त की थी।

म० गौतम बुद्ध ने पहले ही एक सीमा तक मगधा महारथी के समान शाक्य धर्मों और उपामत्ता के लिए (१) हिंसा, (२) मूड, (३) चोरी, (४) कृत्यान् और (५) मद्य इन पाप धान का त्याग करना आवश्यक बननाया था। उन्होंने कहा :—

“He who takes life, whose mouth is full of lies
Who steals, and fouls another's wife,
A slave to drink he even in this life,
The root of his own fortunes undermined.” 2467

— Dhammapada

भावार्थ—जो प्राणियों के प्राण लेकर हिंसा करता है, मूड बोलता है, चोरी करता है, धर्माचार भंग करता है और मद्य पीता है, वह इस जीवन में ही अपना मत्पानाश कर लेता है। म० बुद्ध का यह उपदेश समय के सर्वथा अनुकूल था। उस

समय की परिस्थिति को सुधारने के लिये उक्त पाच याता का प्रचार करना ही आवश्यक था। म० महावीर ने भी समय की इस कमी को दूर करने के लिये एक धावक (गृहस्थ) के लिये ही सर्व प्रथम मघ-मास मधु और पंच उदम्वरादि फलों का त्याग करना अथवा पंच अणुवृत्तों का पालन करना आवश्यक बनलाया था। यह स्वयं बाल ब्रह्मचारी रहे और परमोत्तम सयमी जीवन बिना कर लोगों के समक्ष एक अनुकरणीय आदर्श बन गये। उनके इस उद्योग ने उस समय के पानावरण की एकदम काया पलट हो गई थी। किन्तु प्रस्तुत निबंध में हमें अहिंसा धर्म का विवेचन करना ही है। अस्तु, इस विषय पर अब हम आगे म० बुद्ध के धर्मोपदेश का अवलोकन करते हैं तो उन्हें यह उपदेश देते हुए पात है —

“किसी को न सताओ, किसी को न मारो, जो दुःख में है उर्की सहायता करो।” १

“जान घूमकर चींटी या कीड़ा, किसी भी प्राणी के प्राण का अपहरण मत करो।” २

“यदि कोई भिक्षु इस नियम का उल्लंघन कर तो उसे संघ न निकाल दो।” ३

१ ‘Not to oppress not to destroy!’— Comfort and befriend those in suffering ‘The Buddha chant by Ashwaghosha (S II EXIX) p 234

२ “A Bhikkhu: ought not intentionally to destroy the life of any being down to a worm or an ant” —Mahavagga, 178 B

३ “I prescribe, O Bhikkhus, that you expel a novice (from the fraternity) when he destroys life —Mahavagga 1, 61

"दयालु हृदय होना परमावश्यक है—जनता को अपने एक लोते घेरे क समान मानना उचित है।" १

म० गौतमबुद्ध की इस कल्याणार्थ शिखा का प्रभाव लोगों पर, मुख्यतः, उनके मनो पर यह पड़ा कि उन्होंने धर्म के लिये और ज्ञान प्राप्त कर-संकल्प करके हिंसा करना छोड़ दिया। हिंसक यत्नों को करना बहुत म लोगो न चाह कर दिया। कितने ही ब्राह्मण परिव्राजक भी उनके इस उपदेश से प्रभावित हुये और उन्होंने भी पशुप्रा का यह रवाना त्याग दिया। पावा इन्द्रिया का निग्रह करके वास्तविक यज्ञ उन्होंने किया २। म० गौतमबुद्ध ने इस यज्ञ को ही करुण का उपदेश दिया है। दया में उनका हृदय भीगा हुआ था। वह कहते थे कि दया क बिना मनुष्य विवेक में काम न ले सकगा। वह दया को ठीक समय की वर्या के समान गुणों का उत्पादक मानते थे। * वही उनके निकट

१ "The great requirement is a loving heart to regard the people as we do an only son"—Buddhacharita, p 234

२ When a man with trusting heart takes upon himself the precepts abstinence from destroying life, abstinence from taking what has not been given, abstinence from evil conduct in respect of lusts, abstinence from lying words abstinence from strong intoxicating maddening drinks the root of carelessness—that is a sacrifice, better than open largesse etc "

—Kutadanta-Sutta

* The lack of mercy in to men the cause of the greatest disturbance, as it corrupts the action of their minds and words and bodies. Mercy indeed engenders virtues, as a fructifying rain

धर्म था; यथा,—

धर्मदयास्वरूपेण त्रैलोक्ये च प्रख्यापिता ।

सर्वे तथागतानाञ्च जननी इति ख्यापिता ॥”

भावार्थ—“तीनों लोकों में दया ही धर्म कहा गया है और यही तथागतों (बुद्धों) की जननी मानी गई है ।” †

इन उल्लेखों से म० गौतमबुद्ध के निकट अहिंसा की विशेष मान्यता का विश्दर्शन हो जाता है । उनमें स्पष्ट है कि म० बुद्ध न समय की आवश्यकतानुसार अहिंसा धर्म का निरूपण किया था । उन्होंने धर्म के नाम पर-यशों में होने वाली हिंसा का तो पूर्णतः निषेध कर दिया, किन्तु यह बात उनके श्रुतों की भी न थी कि साधारण जनता में स्वार्थ और शोक के लिये होने वाले प्राणिपक्ष को रोक देते । यही कारण है कि बौद्ध अहिंसा में म० महावीर की अहिंसामें वास्तविकता होत हुये भी गहन अन्तर है । अहिंसा-तत्त्व का पूर्ण विकसित करने का श्रेय तो, म० गार्धी के श्रद्धा में, म० महावीर को प्राप्त था । अतः यह हम निस्संकोच कह सकते हैं कि म० गौतमबुद्ध की अहिंसाविषयक मान्यता म० महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा-तत्त्व का आशिक रूप की भी तुलना नहीं कर सकती, क्योंकि बौद्ध अहिंसा को पालते हुए

makes the crop grow ”

—The Jatakamala (S B B I) p 247

† भावार्थ—“दया का अभाव मनुष्यों के सब से बड़ी अनुविधा है, क्योंकि उसका अभाव टनक मन, वचन और काय सम्बन्धी कार्यों को ठीक ठीक नहीं होने देता । दया से ही सद्गुणों का जन्म होता है, जैसे समय की वर्षा से वृद्धि पड़ती है ।”—अस्तमात्र,

† See ‘Svayambhu Purana of Nepal Dharma’

एक बौद्ध भिक्षु तक मांस और मछली को भोजन में ग्रहण कर सकता है * । इस के विपरीत एक जैन श्रावक गृहस्थ-साधु का यान तो न्यायी है—उन चीजों का नाम सुनना भी पसंद न

* " I prescribe, O Bhikkhus that fish is pure to you in three cases if you do not see, if you have not heard, if you do not suspect (that it has been caught specially to be given to you) "

—The Vinaya Texts, (S B E) XVII p 117.

अर्थात्—“हे भिक्षुओं ! मैं (बुद्ध) मछली को ग्रहण करना तीन दशाओं में उचित ठहराता हूँ । पहला यदि तुम न देखो, दूसरे यदि तुम न सुनो, तीसरे यदि तुम यह संशय न करो कि यह मछली खास तुम्हारे लिए पकड़ी गई है । ”

—विनय पिटक ।

"Newly converted minister invited Buddha with 1250 Bhikkhus and gave meat too. Sangha with Buddha ate it "—Mahavagga, VI 25 ?

भावार्थ—“नवदीक्षित मंत्री ने बुद्ध की १२५० भिक्षुओं सहित आहार के लिए निमंत्रित किया और मांस भी परोसा । सब ने बुद्ध सहित उसे खाया । ”

—महावग्ग ६।१५।२

"Destroying living beings, killing, cutting binding stealing, speaking falsehood, fraud, and deception worthless reading, intercourse with another's wife,— this is Amagandha (sin) but not the eating of flesh "

—Suttanipata, p 40

भावार्थ—श्रावणियों की हत्या करना, अन्यन्नवधन-धन, चौर्य, असत्य, छल, माया, विन्यास, और परस्त्री सेवन यह सब पाप हैं, परन्तु मांस भक्षण पाप नहीं है ।

—सुत्तनिपता

करागा, यद्यपि वह एक जैन साधु की अपेक्षा बहुत नीचे दर्जे की आर्थिक अहिंसा का पालन करता है। बेशक एक बौद्ध मिश्र स्वयं तो जाव-बध नहीं कर सकता है, किन्तु वह मांस भोजन का त्यागी नहीं है। इस जिह्वा-लम्पटता के कारण ही बौद्ध-अहिंसा का महत्व बहुत कुछ हलका हो जाता है। बौद्ध मिश्रधर्मा की वृत्ति के लिये उनके मत्तों को मांस भोजन करना ही पड़ता है। बौद्ध शास्त्रों में ऐसी उल्लेख अनेक हैं। और तो और स्वयं म० बुद्ध के लिये कई वर्षों मांस भोजन तैयार किये जाने के भी उल्लेख मिलते हैं। म० बुद्ध इसमें कुछ भी दोष नहीं मानते थे। “सूत्रकुलाग” में बौद्धों की इस मान्यता का उल्लेख किया गया है §, ‘क्याकि मांस खुरादन पर भी कोई व्यक्ति उसका पाप न महा बध सकता। निस्संदेह ग्राहक संकल्प करके पशु को म्रिय नहीं मानता है; पशु मांस खुराद करके परोक्ष रीत्या उस को मरवाना तो है। म० बुद्ध का जैन-अहिंसा की यह बारीक बात पसन्द न थी और इस में उस समय का लोक प्रवाह कार्यकारी था। म० बुद्ध उसके विरुद्ध अपनी आवाज ऊर्ची न उठा सक। उनकी इस उपेक्षा में बौद्ध-अहिंसा भी अपनी कमी का पूरा न कर सकी— वह भी अधूरी रही और आज नाम मात्र को शेष है। म० महावीर की अहिंसा जैसा वैज्ञानिक प्रवाह उस में जीवन को नहीं मिलता ।’

किन्तु म० गौतमबुद्ध ने अपने मत्तों को जो बुद्ध में हिंसा करना आवश्यक और उचित बनलाया था, वह म० महावीर के

† अनुत्तरनिघण्टु—अ० कलपल सहीमुत्त १२, तथा पञ्चनिघण्टु—उत्तमगह पल्लमुत्त ४, महावज्र ६।३१, महापरिनिवसुमुत्त ४।१०। १८।

तत्सम्बन्धी उपदेश के सर्वथा अनुकूल है। वैशाखी के मेनापति सिंह ने म० बुद्ध के पास जाकर इस विषय में चर्चालाप की थी। उन्होंने पूछा था —

“भगवद् ! मैं एक सैनिक हूँ। राजा ने मुझे अपने कानून की रक्षा करने और युद्ध में लड़ने के लिए नियत किया है। क्या अपराधियों को दण्ड देना दया के विरुद्ध है ? क्या आपके मतानुसार स्वदेश, स्वजाति और स्वपरिवार की रक्षार्थ युद्ध करना अनुचित है ?”

म० बुद्ध ने उत्तर दिया—“दण्ड के अधिकारियों को दण्ड अथवा मिलावा चाहिये, किंतु दया और प्रेम को सदा अपने साथ रखो। यह दोनों शिक्षाओं परस्पर विरुद्ध नहीं हैं। तथामत का मत है कि समस्त लड़ाया गोचनीय है। किंतु उसका मत यह कदापि नहीं है कि सत्य और ध्याय की रक्षा के लिए युद्ध में सम्मिलित होना अपराध है। तथामत का मत है कि स्वार्थ और अहङ्कार का पूर्णतया निरोध कर दुष्ट और पापी जनों की शक्तियों के सम्मुख आत्मसमर्पण कदापि न करो। इनमें सदा संप्रामाण्य करत हुये जीन की इच्छा करो। किंतु हे सिंह ! यह ध्यान में रखना चाहिये कि तुम्हारा संप्राम स्वार्थ और द्वेष, लोभ और अभिमान की प्रेरणा से उत्तेजित न हो।” §

म० महावीर ने भी ठीक यही शिक्षा युद्ध के विषय में दी थी *

§ भगवान् बुद्धदेव-काशीनाथरत पृष्ठ १५० १५८ ।

* म० महावीर ने अपने गृह्य-अनुशासनों के लिये विरोधीहिंसा विधेय रखी थी, क्योंकि जल में रहकर आत्मरक्षा आदि के लिये मनुष्य को अतृप्तता का मुकाबला करना ही होता है। गृहस्थों में भगवान् महावीर के प्रमुख भक्त राजा धैर्यिक विभक्तार जीव चैतक थे। इन दोनों ने कई लड़ाइयाँ लड़ी थीं, यह

किन्तु उनका अहिंसक सत्याग्रह या कष्ट सहन का मार्ग (Cult of Suffering) केवल उन्हीं की चीज है। म० युद्ध के धर्म में उसका दर्शन नहीं होते। अतः अहिंसक धार्मिक को पूर्ण सम्पन्न

नत इतिहास प्रसिद्ध है, जैसे हम आगे देखेंगे। सम्राट् कुणिक अजितशत्रु ने अश्वमेध मीनमहाराज से आरव के अतः ग्रहण किये थे, उस पर भी उन्होंने बैला लीके राजासे युद्ध किया था। (देखो उत्तरपुराण पृ० ७०६ और सं० जैन इतिहास भा० १ पृ० २६)। अन्तिम केकरी गम्भीरमार बाल्य में ही धार्मिकवृत्ति को लिये युद्ध, फिर भी उन्होंने राजा मुण्ड से मगध (ई० पूर्व १२१-४९०) ठाना था। (देखो संक्षिप्त जैन इतिहास, भाग २ मङ्ग १ पृष्ठ ३१)। ऐसा ही अनेक शास्त्रीय उदाहरण हैं जिससे यह स्पष्ट है कि बहुत बड़ा अन्तिम उपाय रूप युद्ध करने का विधान म० महावीर ने गुरुओं के लिये किया था। जैनधर्म के इस युगकालीन प्रथम तीर्थंकर श्रीश्रवणभद्र ने भी ऐसा ही विधान किया था और उनके पुत्र श्रीमहा महावीर अश्वमेध लीके हुए भी चतुरंग सेना लेकर छ सत्र पृथिवी को विजय करने निकले थे। (आदिपुराण पर्व २४ ३३)। इसी अनुरूप श्री सीमदेवसूरी (वि० स० १०२६) ने 'यशस्तिलकचम्पू' में और 'नीतिवाक्यामृत' में एक आरव के लिये कर्तव्यरूप युद्ध करने का उपदेश दिया है। 'नीतिवाक्यामृत' के 'युद्धसमुदेश' में पहले उन्होंने यही कहा है कि—

"युद्धियुद्धेन पर जेनुमसुख शस्त्रयुद्धमुपजयत् ॥ ४ ॥"

अर्थात्—जब एक शत्रु युद्ध के युद्ध तर्क बानी समझने में न आता है तब तो उसको जीतने के लिये शस्त्र युद्ध करना चाहिये। इसी बात को निम्न सूत्रों में आचार्य ने पुन कहा है—

"दण्डसाध्य प्पावृपाया तप्यन्नावाहुति प्रदानमिष ॥ ३५ ॥"

"यन्त्र शस्त्राग्निदाह्यनीकार व्याधी किं नामान्यौघं बुद्ध्यात् ॥ ४० ॥"

अर्थात्—"जो शत्रु केवल युद्ध करने से ही बच में आ सकता है, उसके लिये अन्य उपाय करना अग्नि में आहुति देने के समान है। जो व्याधि यन्त्र, शस्त्र या शर से ही दूर हो सकती है, उसके लिये और क्या औषधि हो सकती है?"

धनान में जो कमी रह गई थी, उसकी मर भ० महावीर ने ही पूरा किया था, यह उनका सैद्धांतिक अहिंसा धर्म व विवेकन में स्पष्ट है । म० मुद्ग न आर्षा पर दया करने का धर्म धर्म व

इन उद्धरणों ॥ मुद्ग के विषय में अनन्त का अनन्त रह ही जाता है । कथावाचक होकर मोक्षम करता अनन्त म विच्छिन्न है पर धर्म, देव अदि की रक्षा व प्रभावना के विषय बाव मुद्ग करने का उपदेश मात्र म महावीर ने दिया है । मुद्ग करते हुए भी मारा में मरता रहे, ऐसी के मुद्ग में मही विच्छिन्न है । कई एक ऐतिहासिक ग्रन्थों में इस विषय का धारका द्वारा वाच्य विव राने की साक्षी स्वरूप उपलब्ध है । प्रसिद्ध बीरब्रह्मण्य श्रीचामुण्डावती (म राजा) के स्तुति में ॥ ७५५ ॥ श्रीचामुण्डावती ने स्वनाम स्तुति में भी किन्तु मुद्ग क्षेत्र में भी उनके चरित्र सम्प्रदाय में रहते थे मुद्गधर्म म उन्नी के मही में चामुण्डावती पुराण की रचना की थी । (देखो ५४ व ७ पृष्ठ १०) । यदि परि धर्म उनके कथा से और प्रज हीन तो वह मर्य गही था कि वह राक्षस में एक धर्मधर्म की रचना कर सदन । इसी प्रकाश अहिंसा (मुद्गल) के अतिरिक्त मीरकी राजा भीमदेव के मही धारक आन धर्मधर्म रैन धर्म थे । वरदा उव राजा राजधानी में गरी था तब मुद्गधर्म ने रा धर्म पर मात्रमग कर दिया गरी न नगर की रक्षा का भार आनू के मुद्ग दिया । आनू के मही बीरता में मगर की रक्षा की, किन्तु मुद्ग में भी वह मर्यादिक विद्या की मही मूला था । राजा के हीन म मीर वर धर्म करता और सम्प्रदायक रहता था । इस प्रकार के धर्म मुद्ग म रैन और अर्यक के कारण मर्य में रह नहीं सगता सम्प्रदाय । इसी रह ॥ ७० ॥ महावीर के मुद्ग विधान का महत्व है । इस मुद्ग की अनन्तता ॥ ५४५ ॥ और अनन्त धर्म कहा है । "पचासवी" (अध्याय १० ८०८-८०९) और "अष्टादश" (वि० स० १६४१) में यह उद्धृत इस प्रकार है —

“या सत्यं नाम दासत्वं सिद्धार्हं विम्वधेयमतु ।

सचे चतुर्विधे शास्त्रे स्वामिकार्यं सुमुत्पद्यत् ॥ ३०८ ॥

जब पर हिंसा न करने का उपदेश दिया जरूर, विष्णु म० महा
वीर इसने एक बड़म भागे बड़ गये—उन्होंने पेट चीर मौज गोक
के लिए हान पाना हिंसा को भी इस पवित्र मूर्ति में न ब निका न
बाहर कर दिया ! यह उनका महा १ विजय थी ।

अथादन्यत्रमायोद्येदिष्टे सुगुह्यान् ।

संस्तुपादोपसंगतु नारद, स्यात्तद्व्यय ॥ ३०२ ॥

यद्वा न ह्यात्मनामर्धे याधनंशानिमागुह्यम् ।

तावद्दु च धानु व नद्वाया सह न सं ॥ ३१०१ (ग्रीष्महिता)

भाषार्थ—अहत, मि. १८ मूर्ति में अर चूर्निष सय की स्वामी-सेरक-वत्
सेवा करना भी वासव्य बन है । उक्त गिर परवर्त, अह, मि. १८ मूर्ति में
मुनि, अर्चि, आरु अर्चि आदि में से किसी एक पर धार उपत । होने पर
सम्पत्ति (जैनी) को उस दूर करने के लिए तत्पर रहना चाहिये अथवा "य
हम अग्नी रानव्य है और "य तक मर, नसि (नरेश्वर का जोर) और याचना
द्वय (स ज्ञा) है, तब तक वह सम्पत्ति पुन्य उन पर आ, हुए किसी प्रकार
की सेवा की न ता इस ही सत्ता है अर न मुन ही सत्ता है । "एही
महिता में 'प्रभावना वन' के विषय में बयन है —

“यास्त प्रभावनागाऽन्ति विद्यानंशानिमिषेने ।

तपादानादिमिषेन गधमा कयो विषाधनान् ॥ ३२० ॥

भाषार्थ—विद्या, मर, अतिवद, (नरेश्वर का जोर) तब, हान आदि के
हाना जैनधर्म का उक्त करना वास्तव प्रभावना है । दक्षिण भारत के जैनी
और और रागशा की दक्षिण करण बन उभरना की दूर ही गई कही जा
सकती है । जैनाचार्य ने अवसम्य कुरम्ब रोष को सम्य बन कर जैनधर्म में
दीक्षित किया था । उन्होंने उद्देश्य और शत्रु दोनों में पारद्वन कर दिया
था । परिणामतः कुरम्ब रोष दक्षिण भारत के एक प्रदेश पर शासनविपरीत हो
गये थे और उन्होंने धर्म प्रभावना के लिए अपने अतिवद को सर्वत्र प्रगट किया ।
Original Inhabitants of India p. 236) । इन उद्धृता स
जैनधर्म में मुद्र विषय के विवेचन का अन्त दिग्दर्शन हो जाता है ।

तत्कालीन राज्य और अहिंसा !

तब म० महावीर की अहिंसा प्रधान वाणीका अस्तर देश के इस ओर ने उस ओर तक फैल गया था—एकदा वाचापण्डित विष्णुल अहिंसक बन गया था। उस समय के लगभग सब ही पढ़े पढ़े शास्त्र म० महावीर की शरण में आये थे और बहुतों ने अहिंसा महाग्रन्थ को ग्रहण करके मोक्ष लक्ष्मी को चरण दिया था। कौशाम्बी के राजा शतानीक, सिन्धुसमीचीर के राजा उदयन, हेमाद्र देश के मृग उद्यधर प्रभृति नरपुंगव इस सन्धि में उन्नेजनीय हैं। जिस समय म० महावीर विहार करत हुये कौशाम्बी (वर्तमान फाँसम जिला इलाहाबाद) पहुँचे थे तो उस समय वहाँ के राजा शतानीक ने उनकी विशेष विनय की थी और अन्न में वह भगवान के सत्र में सम्मिलित हो गया था। चम्पा (वर्तमान मागझपुर) के राजा दधिवाहन भी मुनि हो कर वीर सत्र में आ मिले थे। इनकी रानी अमया ने मेठ सुदर्शन का व्यवहार का मृदा क्षेप लगाया था, जिसके कारण ऋद्ध सुदर्शन चिरक होकर मुनि हो गये थे। वनिग (वर्तमान ओरिसा) के राजा जितशत्रु भी मुनि होकर अहिंसा धर्म का प्रचार करने में लग गये थे। कापिल्य (कर्णप्रासाद) के राजा भी निग्रन्थ साधु हुये थे। सिन्धुसमीचीर (वर्तमान सिन्ध) और कच्छ देश के राजा उदयन भी विगम्भर मुनि हुये थे। दक्षिण भारत में हेमागदेश (वर्तमान मद्रास Mysore) के राजा जीवधर ने मुनि व्रत धारण किये थे। इन तथा और भी अन्य राजाओं ने, जो म० महावीर के समकालीन थे, महाग्रन्थों को ग्रहण करके अहिंसा तत्व का

पूर्णतः पालन और प्रचार किया था । * म० महावीर की इस उक्ति को कि ' जे कस्मे सूर ते घस्मे सूर '—' जा कर्म क्षेत्र में शूरीर ह, वे ही घर्म भाग में शूर होत है ' इन्होंने नर-वीरों ने सार्वक बनाया था । किंतु इनके अतिरिक्त अनेक वीर ऐसे थे जिन्होंने अहिंसातत्व को आधिक्य रूप में ग्रहण करके लोक कल्याण और अपना हितसाधन किया था । सत्सेप में राजगृह के राजा श्रेणिक विम्बसार (ई० पू० ५८२-५६४) और उनके पुत्र राजकुमार अमरपुमार, धार्पिण्य आदि, धावर्त्ता (सहेट महेठ, जिना गोरखपुर) के राजा प्रमनजित और उनकी राना मल्लिका (ई० पू० छठी श०), वैशाली (वसाइ जिना मुजफ्फरपुर) राज्य के समापति राजा चेष्टक, उनके पुत्र मेनापतिसिंह, अगदेश का अधिपति कुणिक, जो पतमान बिहार प्रांत के एक भाग का शासक था और उपरान्त मगध राज्य का अधिकारी हुआ था, बनारस का राजा जितगुप्त, उज्जैन का राना चंद्रप्रद्योत (ई० पू० छठी शताब्दि), मथुरा का राजा उदितार्य, पौदनपुर का राजा पिंडराज, वराणस देश (मानवा) के राजा दशरथ, गिरिनगर (जुनागढ़) के तत्कालीन राजा इत्यादि सत्रिय वार म० महावीर के उपासक थे और उन्होंने यथाशक्य बौद्ध-धर्म का पालन किया था । x

उन सब का परिचय इस छोटे से निबंध में कराना नितान्त असम्भव है किन्तु भी यहाँ पर उस समय के दो श्रेष्ठ राज्या का उल्लेख करके यह स्पष्ट कर देना उचित है कि तब म० महावीर की अहिंसा ने किस प्रकार देश को पराक्रमी और समृद्धिशाली

*संक्षिप्त जैन इतिहास, भा० २ पृष्ठ १२-१०१

+संक्षिप्त जैन इतिहास, भा० २ पृष्ठ १२-१२८

बनाया था ।

तब मगध और वृजि राज्य प्रसिद्ध थे । मगध में सम्राट् धेनिक शासनाधिकारी थे, किन्तु वृजि राज्य में कोई एक व्यक्ति राजा न था । यहाँ प्रजाजनों के दम पर शासन किया जाता था । उस राजसभ में क्षत्रियों के लिच्छिवि, क्षात्र, वैश्विक आदि आठ कुलों के प्रतिनिधि शामिल थे और उनके प्रधान राजा खेदक थे । वृजिसभ की राजधानी वैशाली थी ^१ । मगध का राज्य अभी समृद्धि को प्राप्त न हुआ था कि वृजि राज्य उन्नति की चरम सीमा का उपयोग कर रहा था । म० महावीर का सम्बन्ध इस ही राज्य से था—उन्के कुल के क्षात्र (नाथ) क्षत्री इसमें सम्मिलित थे और राजा खेदक ऐस उन्के नाना थे । वस्तु, 'स्वमायत' म० महावीर की शिक्षा का इन लोगों पर मुख्य प्रभाव पड़ा । वृजिसभ के प्रायः अधिकांश सदस्य—लिच्छिवि, क्षात्र, वैश्विक आदि—जैनधर्म में दीक्षित थे । फलतः, उनका शासन न्याय, दया और पराक्रम का आदर्श था । सच बात तो यह है कि जहाँ अहिंसा-धर्म होगा, वहाँ सुमति न्यत आ विराजेगी और तब ऐस का होना अनिवार्य है, जिसका एक मात्र परिणाम समृद्धि है । वृजिराज सभ में यही हुआ । म० महावीर के अहिंसा धर्म को दश के प्रधान खेदक और रामपतिसिंह ने ही नहीं बल्कि अगणित क्षत्री-पुत्री और अन्य लोगो ने ग्रहण किया—म० बुद्ध के कई बार प्रचल करने पर भी जैनों की संख्या वहाँ अत्यधिक रही ^२ और यह अहिंसा धर्म का पालन करने का पूरा ध्यान रखती थी, यह बात न्यय बौद्ध ग्रन्थ से स्पष्ट है । एकदा म० बुद्ध ने

१ म० महावीर और म० बुद्ध पृ० ६-१०

२ क्षत्रिय हैं स इन बुद्धिष्ठ इन्द्रिया, पृ० ८६

वैशाली में मास मोक्षन ग्रहण किया। इस पर जैनियों (निर्ग्रन्थों) ने बड़ा आन्दोलन मचाया। उन्होंने गनी-गनी और चौराहे-चौराहे पर खड़े हो होकर इसका विरोध किया और बुद्ध के इस कार्य को हिमाकार बनाया^३। बौद्ध लेखक का यह कथन वैशाली जैन अहिंसा की प्रधानता का चोत्कर्षक है। अतः यह मानना अनुचित नहीं है कि इस अहिंसा-प्रधानता का ही वह साराणाम था कि—

'All these Vajjis lived in great unity and concord which was a particular mark of their confederacy and this union coupled with their martial instincts and the efficiency of their martial institutions made them great and powerful amongst the nations of north eastern India'—
some Kshatriya Clans in Buddhist India p-60

अर्थात्—'यह सब वज्जिलोक परस्पर बंधुन ही प्रेम और सहाह सुमति में रहते थे, जो उनके सर का एक खास चिह्न था। इस ऐक्यता के साथ ही उनके वीरोचित भावों और श्रेष्ठ सैनिक प्रवृत्ति ने उन्हें उत्तर-पूर्वी भारत में एक महान् और शक्तिशाली राष्ट्र बना दिया था।'

म० महावीर की अहिंसा सवमुत्र वीरों के लिये सत्य पथ प्रदर्शक है। स्वयं जैन शास्त्रों में लिखा है, राजा चेष्टक इनने चर्मो-कर्मों से कि वह रण भूमि में भी जिनेन्द्र मगवान् की मक्ति और आपत्त कराना नहीं भूलते थे। उस पर भी, उन्होंने कई बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ मगध के राजाओं से लड़ी थीं और उनमें उनकी विजय हुई थी। भारत की उन्नति में यही एक कण्टक

थे। आश्विन मगध नरेश अजातशत्रु (ई० पू० ३४४-३२) ने कूटनीति में काम लिया। उसने अपने मंत्री यस्मकार को जानबूझ कर झूठ मूठ बिकान दिया। यज्ञियन लोगों ने समझा अजातशत्रु सचमुच यस्मकार से गृह होगया है। अतएव उन्होंने यस्मकार मंत्री को अपने यहां नियुक्त कर लिया। यस्मकार ने अपनी चात्तार्की से उनमें फूट डाल दी। ये सब प्रेम धर्म को भूच गये और अजातशत्रु की प्रशंसा चीनी हो गई। स्वतंत्र युधि अजातशत्रु के आधीन ई० पू० ३४० में हो गये। इस एक उदाहरण में ही अहिंसा और प्रेम सिद्धान्त का महत्त्व स्पष्ट है।

किन्तु इसके साथ ही मगध सम्राट् श्रेणिक के चरित्र पर भी एक दृष्टि डाल लेना अनुचित नहीं है। श्रेणिक एक छोटे से राजा के पुत्र थे और प्रारम्भ में यह बौद्ध थे। उपरान्त राजा चंद्रक की पुत्री सेवनी के प्रभाव में यह जैन हो गये थे। सेवनी को ही उन्होंने पहिरानी बनाया था। मगधान् महावीर के गृहस्थ शिष्यों में यह प्रमुख थे। म० महावीर ने उन्होंने हजारों प्रश्न किये थे और आश्विन यह क्षात्रिक सम्बन्धित हो गये थे। उनके महान् व्यक्तित्व में भी अहिंसा का चमत्कार प्रगट होता है। जैन अहिंसा को उन्होंने अच्छी तरह समझा था-यह पक्के जैनी थे। और जैनी के लिये अन्याय और अत्याचार मेंटना परम धर्म है। श्रेणिक अपने इस धर्म पावन में किसी से पीछे नहीं रहे थे। उन्होंने कई बार 'अमारीशोच' करके जीव मांस को प्राण दान—अमयदान दिया था। जीवों की रक्षा और प्रजा की मलाई के लिये यह सदैव तत्पर रहते थे। एक दफा गांधार देश के राजा

सात्यकि ने उन पर दूत द्वारा कहना मेजा कि 'भारत पर इस समय महा समुद्र के बादल उमड़ पड़े हैं—ईरानियों ने हम पर धावा कर दिया है—हमारे अकेले के घूँतका यह काम नहीं है कि उनकी मार मगायें और स्वदेश की रक्षा करें। आइये, आव हमारा हाथ पंटाइयन !' यह जेन घोर झूठ तैयार हो गया और उस ईरानियों को भारत में आने न बड़न दिया। यह घटना ई० पू० छठी शताब्दि की अनुमान की जाती है। उपरान्त जेन सम्राट् मन्दकर्षन ने ई० पू० ४२५ में ईरानियों को भारत सीमा से निरान बाहर कर दिया था। इस प्रकार दो जेन सम्राटों द्वारा भारतकी रक्षा हुई थी। जेन अहिता का यह प्रयास था। उसा धैरिक और मन्दकर्षन को कायर नहीं बनाया था। मन्दकर्षन ने कई लड़ाया लड़कर नद साम्राज्य को विस्तारित किया था।

इन ही प्रकार अन्य राज्या में पशुच कर म० महावीर का अहिता ने चमत्कार दिखाया था और उस समय देश धमात्मा, धनी और वनवान था। यूनानी लेखकों क वर्णन में इस व्याख्या का समर्थन होता है।

२ ' With the reign of Bimbisara (582-554 B C) the kingdom of Magadha entered upon that career of expansion which was closed only with the conquest of Kalinga by Asoka. The king of distant Gandhara sent an embassy to Bimbisara probably with the object of invoking his assistance against the threatened advance of the Achaemenid power. ' Modern Review Oct 1930 p 438

३ 'नरुर्गो विहार एव ओऽसि सिन्धु सोलाहटी, भा० १५० ७७ ८६

(६)

मौर्य साम्राज्य में अहिंसा का चमत्कार ।

म० महावीर के मुक्त हो जाा पर उनके अहिंसा धर्म का प्रतिपादन उनके शिष्यगण करते रहे थे । देश में अहिंसा का साम्राज्य बनाये राजन की उन्हीं दिश में ठान ली थी । सिन्धु प्रायणों ने फिर एक बार अपना आधिपत्य जमाने की कोशिश की, परन्तु यह इसमें असफल रहे । फलतः जैन और बौद्ध धर्मण अपन अहिंसा-संदेशको दिगन्तव्यापक बनान में सफल हुए ।

सम्राट् श्रेणिक क बाद भारतीय इतिहासमें सम्राट् चन्द्रगुप्त का नाम प्रसिद्ध है । इन्होंने अपने पाण्डुपुत्र से समस्त उत्तरीय भारत को जीत लिया था और मौर्य साम्राज्य की नींव डाली थी । यह भूतकेवली मद्रपाण्डु के शिष्य थे । अभिभूत विद्वानों का मन है कि चन्द्रगुप्त न अपने अन्तिम जीवनकाल में जैनमुनि की दीक्षा ग्रहण की थी^१, परन्तु उनकी यह मान्यता ठीक नहीं है, क्योंकि थायक हुए बिना सहसा कोई जैन मुनि नहीं हो सकता । उस पर चन्द्रगुप्त क देश 'मोरिय' अथवा 'मौराण्य' में म० महावीर का उपदेश विशेष कायकारी हुआ था । उनके दो प्रमुख शिष्य मौर्य ही थे । और 'मुद्राराक्षस' नाटक से यह स्पष्ट है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त क समय में जैन मुनियों का ही प्राबल्य था यह राज महला तक में पहुँच कर उपदेश दिया करते थे^२ । स्वयं सम्राट्

१ श्री नरसिंहाचार्य इत "अवधनटोले" नामक अग्रे १ पुस्तक देखो ।

२ भारतीय नाटककाराने ऊँहीं साधुओंका उद्देश्य अपने नाटकों में किया है जिनका तात्पर्यभी ऐतिहासिक घटना क समय प्रबल्य था । 'मुद्राराक्षस नाटक' में चन्द्रगुप्त का वर्णन है और उसमें जीवसिद्धि नामक एकजैन है । देखो "शोर"

चन्द्रगुप्त इन धर्मशास्त्रों का आदर-सत्कार किया करता था, यह बात यूनानी गलची मगास्थनीज़ भी कहता है^३। अतः चन्द्रगुप्त को शास्त्रों में एक जैन मानना ठीक है।

अच्छा तो, जैन अहिंसा का प्रभाव सम्राट् चन्द्रगुप्त पर क्या पड़ा था ? इस प्रश्न के उत्तर में हम दब्यत हैं कि उन पर इसका प्रभाव वही पड़ा था जो जैन अहिंसा का पड़ना चाहिये। सम्राट् ने पहले ही घोषित कर दिया था कि 'प्रजा की समृद्धि शान्ति तथा उद्योग पर निर्भर है'^४। और उन्होंने इस धारणा को सकल बनाने में कुछ उठा-चढ़ाया। पहले ही अपने अतिथि-मंडल में उन्होंने भारतीय आचार्यों का आनन्द करके प्रजा को ऐक्य-मूत्र में बांध लिया और फिर विशाल साम्राज्यकारी नित्यकर्म को भी मार मगाया। इस प्रकार अपने उद्योग के दल में उन्होंने अपने साम्राज्य को शान्ति के द्वार पर ला उपस्थित किया। और फिर साम्राज्य का आन्तरिक प्रबंध इस सुचारु और व्यवस्थित ढंग में किया कि देश में सम्पूर्ण शान्ति और समृद्धि का दौरा दौरा हो गया, जिस देखकर विशाल भी दंग रह गया। यह मानना ही इच्छा करने लगे और उसके प्रशंसा के गीत गान लगे^५, उन्होंने चन्द्रगुप्त के साम्राज्य में उनकी इस नीति को सोलह अक्षरों पर लिखा होता हुआ देखा कि "जो राजा पद लिखकर प्राणिमात्र के दिन में तन्दर दाना है और प्रजा का शासन करता है वह विरमान तक पूर्ण का उपयोग करता है^६।"

३ जनरल आफ दौ रायल एशियाटिक सोसायटी भा० ५, पृ० १७६

४ बीटिन्स अर्थशास्त्र, पृ० २३५

५ मैकडिन्डल, गेसिबर्ट इण्डिया देमो।

६ बीटिन्स अर्थशास्त्र, पृ० ६

सचमुच चन्द्रगुप्त ने अपने शासन काल में प्राणीमात्र का हित करने का उद्योग किया था। मद्य मांस-द्यून आदि के विषय में उन्होंने जो नियम बनाये थे, यह कम से कम हिंसा होन देने के माय की साक्षी बन है १। यत्कि उन्होंने आज्ञा निकाली थी कि जो पशुधरा को मृत्यु मार या मन्वाय अथवा स्वयं चुराये या चुरायाम उसको मृत्युदंड दिया जाय। २ यह आज्ञा अहिंसा प्रेम की उत्कट लगन की चोन्क है। उस पर, पशुधरा की ही नहीं बल्कि वृक्षों की रक्षा का भी प्रबंध सम्राट् न किया था ३। इस हालत में यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि उन्होंने मानव जाति के हित के लिये जितना न उद्योग किया होगा। हम तो जानते हैं, यह उनके उत्कट अहिंसा प्रेम का परिणाम था। और उसी दयानु हृदयता ने ही सम्राट् को राज पाट छाड़ कर जंगल का रास्ता लेन के लिए बाध्य कर दिया। यद्य गहन दुर्मित पर्वत नपोधन साधुधर्मों का भोजन मिाना भी दुष्कर हो गया-सम्राट् ने जीर्णों का यह कष्ट न दया गया। जितना हो सका रक्षा का प्रबंध उन्होंने कराया-उनने पहले में ही येन नियम बना रखे थे ४, किंतु फिर भी यह अहिंसा का महा अनुष्ठान करने के

१ कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण २ प्रकरण ४० ४३ व ४६ नीर अधि-
८ पृ० ११०

२ कौटिल्य अर्थशास्त्र (सर्गहीन) पृ० ११६

३ पू० पुस्तक, पृ० २१५

४ पू० पुस्तक (अधि० ४ पृ० ७८) पृ० ११०

इन नियमों में एक नियम यह भी था कि "त्रिस देश ॥ परम अन्धी हो
स्वयं अपनी प्रजा को देखर (रात्रि) भटा जावे।" इसी अनल्प समस्त सम्राट्
रक्षित भाव हो रहा है।

जिंद दुनयेइका मटवाहु के निकट मुनि होकर दक्षिण भारत के
 क गये और वहा समुद्रतिरि प कर्म-कैरियों में उम्मेने भूटे
 महा पापजन दिया क स्वर्गधाम निधार गद ।

हिन्दु समुद्रगुन के द्वारा अहिमाधर्म की उमरि हुई उन
 इस्के गोन मघाट अगोख न गूब हो चिकमिन करदी । कनिह
 के गूड में एक साथ आन्मी काम आतर । दयानु हृदय अगोख
 यह का-संहार म देर मके नज्जल उन्हें 'सम्बोधि (सम्बदर्शन)
 का प्राप्ति हो गई । सम्बदाय और पंचक मोह का तोड़ कर वह
 एक मात्र सत्य और अहिंसा का प्रचार करने के निचे मुन पड़े ।
 मघाट होन के साथ साथ वह एक उफट धर्म प्रचारक बन
 गए । धर्म्य सम्बन्धी अपनी आश्रामों को पत्थरों पर सुदवा कर
 साम्राज्य भर में लमवा दिया और उनका पालन कराने के लिये
 केदनि राज कर्मचारी नियम कर दिए । अगोख के यह धर्मोप
 ग्गक विन्गी तक पहुँचे थे ।

अगोख ने "जीव-रत्ना के सम्बन्ध में बड़े बड़े नियम बनाये ।
 यदि किसी भी जानि या वल का कोई भी मनुष्य इन नियमों का
 नाकुना था तो उसे बड़ा बड़ा दण्ड दिया जाता था । कुल साम्राज्य
 में इन नियमों का प्रचार था । इन नियमों के अनुसार करे प्रकार
 के प्राणियों का बध बिलकुल ही बन्द कर लिया गया था । जिन
 पशुओं का मांस खान के काम में आता था उनका बध यद्यपि
 बिलकुल तो नहीं बन्द किया गया तथापि उनके सम्बन्ध में बहुत
 बड़े बड़े नियम बना दिए गये, जिसमे प्राणियों का अघातुध
 बध होना रक्त गया । सालमें १६ दिन तो पशुबध बिलकुल ही मना
 था । अगोख के वंशम स्वर्ग-लेख में यह सब नियम स्पष्ट

दिये गये हैं।" और यह नियम जैनधर्म के अनुसार है। घासुग और बौद्ध अहिंसा के नियमों का उनमें सामान्य ही नहीं बैठता। डा० वर्न सा० कहते हैं —

"His (Asoka's) ordinances concerning the sparing of animal life agree much more closely with the ideas of the heretical Jains than those of the Buddhists" —(Manual Buddhism p 275)

मार्ग यही है कि अशोक को शासन लिपियों का अहिंसाधर्म बौद्धों की अपेक्षा जैनों के धर्म के बहुत ही निकट है। और सचमुच जैन नियमों ने सम्राट् के धर्म पर खामा प्रभाव डाला था—उनका धर्म सर्वथा जैन नियमों के अनुकूल था, यह हम अन्यत्र भिन्न कह चुके हैं^१। अतः सम्राट् अशोक की धर्मविजय भ० महागौर के अहिंसा धर्म की विजय है। इस विजय से भारत की उग्रति चरमसीमा को पहुँची थी, यह मंगलमय अहिंसा नियमों के पालन का फल था। इससे अहिंसातत्त्व का राज्यो पर कैसा उत्तम प्रभाव पड़ता है, यह दृष्टव्य है।

अशोक के पश्चात् सम्राट् सम्राटि मौर्य (ई० पूर्वं २२०-२२१) ने भी अहिंसा धर्म प्रचार का उद्योग किया था। वह भ० महावीर के धर्म के अनन्य मत्त थे। उन्होंने भी अनेक

१ अशोक के धर्म लेख, पृ० ५१

२ हमारा "सम्राट् अशोक और जैनधर्म" नामक टूट देलो।

३ सम्राट् अशोक और जैनधर्म देखो।

शासनविधियां मूलतः कर दयाधर्म का प्रचार किया था । मुख्य बात तो यह थी कि उन्होंने धर्मोपदेशकों के द्वारा धर्म प्रचार का महान् उद्योग किया था । धर्म ही नहीं अनाथ दत्ता में भी अहिंसा धर्म का संदेश उन्होंने पहुँचाया था । नीचे ऊँच सब हा प्राणियों में उनके उद्योग में मुख्य शानि को पाया था । साम्प्रतिक अनुरूप उनका भाव शानिभूत भी अहिंसक थीरथा । यद्यपि उनका राज्य क्षणिक था, परन्तु उनका अस्तित्व में 'धर्म विषय' का थी । हिन्दू 'गणेशदिना' में उनका विषय में कहा गया है ।—

“तस्मिन् पुष्पपुर मये जगत्तम शताकुले ।
 शतकर्म क्षयाहन् शानिभूको मयिष्यति ॥
 मराना कर्मनिग्रो दुष्टात्मा प्रियविग्रहः ।
 शौराष्ट्रमप्यन् घोष धर्मगद्दी सधार्मिकः ॥
 ॥ जैष्ठ्र भानर् माधु संप्रति प्रययन् गर्णः ।
 त्यागयिष्यति मोहात्मा विजय नाम धार्मिकम् ॥

अर्थात्—“तब मनोहर पुष्पपुर (वटना) में यज्ञविद्याकाण्ड का निर्गंधा शानिभूत होगा । वह दुष्ट राजा पाप मार्ग में निरत होकर सौगाढ़ के लोभ को दूरता करगा और 'धर्मविषय' की पालना करगा । जिसने उसके जैष्ठ्र भाना संप्रतिक धर्म-जैनधर्म की प्रमादना होगी । इस प्रकार सौगाढ़ (गुजरात) में जैनधर्म का प्रचार शानिभूत द्वारा हुआ था ।

किन्तु शालिशूक व बाद मौर्यवंश में ऐसा कोई साहसा और बलवान राजा न रहा जो अहिंसा धर्मकी रक्षा कर सकता । यह इतने हीनबल हो गया कि उनका शासक मगधनि म्बर्य राजसिंहासन पर अधिनार जमा बैठा और उसके साथ ही मौर्य साम्राज्य का "जैन अहिंसा म्बरणकाल" भी समाप्त हो गया ।

उपसंहार ।

“मब्बेपाणा पिवा उवा, सुइसाया दुह पडिइला अप्पिय, वहा ।
पिय जीयिणो, जीयि उकामा, तम्हा ग्यातिगएज्ज किंचण ॥”

मगधान् महाधीर ने अहिंसातत्व की प्रधानता के लिये यह ठीक ही कहा कि “सब प्राणियों की आयु प्रिय है, सब सुख व अमिलायी है, दुःख सब के प्रतिकूल है, यथ सब को अप्रिय है सब जीने की इच्छा रखन है, इसमें किसी को मारना अथवा कष्ट पहुचाना उचित नहीं है १” धीर प्रभु का यह उपदेश निखर सत्य है । जो धान म्बर्य तुम्हें अप्रिय है, यह दूसरे को कैसा अच्छी लगेगी ? फिर तुम्हें क्या अधिकार है कि तुम उस अप्रिय व्यवहार का प्रयोग अन्य के प्रति करो । अहिंसातत्व का महत्व इस विचारसरणी में गर्भित है । और उस पर यह लाञ्छन ही नहीं आ सकता कि यह अत्यावहारिक है । म० महाधीर ने तो उसका विवेचन इस वैधानिक ढंग पर कर दिया है, जैसे कि

एव पृष्ठा में संक्षेप में बताया जा चुका है, कि हर कोई उसका पालन वही सुगमता और श्रद्धा से कर सकता है। जा चाहे कि पूर्ण अहिंसक ही बन जाऊँ, उसके लिए भी मार्ग साफ है। 'अहिंसा महायूत' का पालन उम करना होगा। किन्तु ऐसे घोर पक्ष में विरोध होता है। साधारण जनता तो हीन-साहस हुआ करती है और वह उस मार्ग को ही पसन्द करती है, जिसमें कुछ कुछ कम हो। ऐसे लोगों के लिये, खासकर राष्ट्र और नागरिक धर्म के सुचारु पालन के लिये म० महावीर ने 'अहिंसा सन्तुष्ट' का विधान किया है। उनका यह विधान सबधा सैद्धांतिक है, क्योंकि भाष ही किन्मा काय के हान या न होन में मुख्य है—भाष के बिना कोई कार्य नहीं हो सका। यम, अहिंसा-नत्य के पालन में भी भाष ही प्रधान है। मगधान महावीर ने यही बताया है,—

“अदण्णं सो विहिंसो दुदत्तणं ओममो अहिंस रोअ”

“जिनका मन दुष्ट—हिंसक—प्रमत्त भावों में भरा हुआ है, वह यदि कायिक रूप में किसी का न भी मागता है, तो भी हिंसक ही है।” इस लिये जिसके भाव दयालु—अहिंसामूर्ति हैं, उसमें यदि कायिक हिंसा हो जा जाय तो भी उसके अहिंसायूत में कुछ दोष नहीं आता है। इस दृष्टिकोण को ध्यानमें रखन में म० महावीर की अहिंसा की पूरणा स्पष्ट हो जाती है। उस जैसा वैज्ञानिक और व्यवस्थित विवेचन अन्यत्र दृष्टि नहीं पड़ता। और न यह राष्ट्रीयता में बाधक है। पूर्व पृष्ठा में आ दो-एक राज्यों पर के अहिंसा प्रमाण का दिग्दर्शन कराया गया है, यह इस व्याख्या का प्रमाण है। उस पर, ऐंगिक या चन्द्रगुप्त जैसे अहिं-

सब चीजें शासक एक-दो नहीं, अनेक हैं। मौर्य साम्राज्य व बाद हुए अहिंसक धर्म में विशेष उल्लेखनीय कलिङ्ग सम्राट् ऐल गार्ग्येल, सम्राट् विजयमदित्य, सम्राट् कुमारपाल, सम्राट् अर्मा-पूर्य प्रभृति नामधेय हैं। जिनका अपन शासनकाल में अहिंसा तत्व का चमत्कार चारों ओर के उन सब प्राणियों को मुख माना का अनुभव कराया था। इनमें सम्राट् गार्ग्येल कलिङ्ग साम्राज्य व अधिराजि (१०००-१०७-११०) में। यह जैनधर्म की परम मक्त ये और अन्तिम जायन में १० पूर्व १७० में उन्होंने कुमार पूर्यत पर विशेष रूप से यह नियमों का अभ्यास किया था। किन्तु इस प्रकार धार्मिक धृति को स्थान रूप में गार्ग्येल न कई सफल युद्ध लड़े थे। उन्होंने अपन भुज विषम ॥ मार भारत की दिग्विजय की थी। पिछान् उनका 'मान नैपोलियन' कहत हैं। सधमुच यह जन्म जान योद्धा और दक्ष सेनापति थे। साथ ही यह एक प्रजा हिनेरी आदर्श राजा थे। जैन अहिंसा ॥ गौरव उनके जीवन में प्रकाशमान है। उनके उपरा न सम्राट् विजयमादित्य का नाम उल्लेखनीय है। यह मानरा के प्रसिद्ध 'शकारि' उपाधिधारी राजा हैं। आधुनिक गदमिन्न के यह पुत्र थे और प्रतिष्ठान (पंडित) व आकर उन्होंने मालवा में शकों की मार मगा कर वहा अपना राज्य जमाया था। पहले यह जैय थे, परन्तु उपरान्त एक जैसचार्य के उपदेश से प्रभावित होकर यह जैनी हो गये थे। उनका प्रताप राजा भारत में जब-तब ही हुय है २। १०

वृष १७ में उद्धान अथवा विरम संचन् चलता था। विरमादित्य के पश्चात् दक्षिण भारत में राठौर राजाओं ने अग्नि यज्ञ प्राप्त किया था। उनमें सम्राट् अमोघवर्ष विग्रेव प्रख्यात थे। उम्रमय उनकी गणना समार के महान शासकों में की जाती थी। यह जैनाचार्य धीजिज्जमेनस्वामी के श्रावक शिष्य थे। उद्धान अथवा शासनकाल (८१-१३२ ई०) में विजने ही संक्रामों में विजय प्राप्त की थी। उनकी धर्मनिष्ठा इतना बड़ी-बड़ी थी कि अतिसिद्ध यह चैन मुनि होकर अहिंसा का पूर्णतः पालन करने लगे थे। अमोघवर्ष के समान ही सोरंडरी सम्राट् कुमारपाल थे। उन्होंने मत् ११४३ से ११७४ ई० तक गुजरात पर शासन किया था। यह प्रसिद्ध जैन साधु हेमचन्द्राचार्य के शिष्य थे। अपनी गुरुका यह वक्तु आदर करते थे। अपने राज्य में उद्धान जीव रक्षा के नियम कठोर नियम बना रखे थे और उन्होंने कई बार अपने राज्य में अमारी घोषणा कराई थी। अहिंसा प्रचार के नियम उग्र श्रेष्ठ भी नियम किए थे। उनकी ऐसा देवी रासपूजाने के कई हिन्दू राजाओं ने भी हिंसा शोक के नियम शासन के लिये स्वीकार्य थे। मारागुन, इन और तेम ही उदाहरणों में जैन अहिंसा का प्रभाव स्पष्ट है। उम्र पर, और जो और, म० महाराष्ट्र के शिष्या न जैन शिक्षा का मृदुल प्रभाव यवन-सम्राट् अकबर के हृदय पर डालने में भी सफलता पाई थी। सम्राट् अकबर जैन अहिंसा के कायल हो गये थे; यहाँ तक कि लोग उन्हें "जैनो" ही कहा

१. भारत के प्राचीन राजवंश, भा० १ पृ० ११-१२

२. अंगी दिप्ती जैन स्मृति, पृ० १०० और राजपूतों का इतिहास,

भा० १ पृ० ११

समझने लगे थे^१ । सम्राट् ने विशेष आशापत्र निकाल कर हिंसा कर्म का निषेध किया था और जीव हत्या बन्द करा दी थी^२ । उन्होंने स्वयं मांस-भोजन का त्याग कर दिया था और इस विषय में बड़ी उपयोगी शिक्षाओं का प्रचार किया था, यथा .—

“ससार दया में जितना घग में होता है, उतना दूसरी हिंसा भी चीज में नहीं होता । दया और परोपकार, ये सुख और दीर्घायु के कारण हैं ।” — (आइने-अकबरी, खंड ३, पृ० ३८३)

“यद्यपि अनेक प्रकार के लाघ पदार्थ मित्र हैं, तथापि मनुष्य जीवित प्राणियों को दुख देन, मारने और मक्षण करने की ओर प्रवृत्त रहत है, इस कारण उनकी भ्रष्टानता तथा निर्दयता है । कोई भी आदमी निर्दयता को रोकने में जो आन्तरिक सौन्दर्य है, उसको नहीं देखता । प्रायः लोग अपने शरीर को पशुओं की कर्म बनाया करते हैं ।” — (आ०अ०, भा० १ पृ० ६१)

“मेरे राज्याभिषेक की तारीख के दिन, प्रतिघर्ष, ईश्वर का उपकार मानने के लिए किसी भी मनुष्य को मांस नहीं खाना चाहिये, जिसमें सारा वर्ष आनन्द के साथ निकले ।”

“कसार्ई, मच्छीमार और ऐमे ही दूसरे मनुष्यों के, जिनका

1 “But the Jain holy men undoubtedly gave Akbar prolonged instruction for years, which largely influenced his actions, and they secured his assent to their doctrines, so far that he was reputed to have been converted to Jainism”—
Jain Teachers of Aabar by V A Smith p 335

२ देखो, सूरेश्वर और सम्राट् ।

मात्र हीसा बगना हो है—निषागम्यान, बन्नीम बनन होन
 रहिराँ—(मृतोत्तर और सम्राट् पृ० १७, १७८)

सागरजः जैन अहिंसा का अद्भुत प्रमाण अरब पर पड़ा
 पाहो श्री प्रभाव क कारण उसका शासन भी प्रेम और
 कृपा के नियम सिद्ध हो गया है। इस प्रकार यह विलुप्त
 साई हिम मं मरावीर का अहिंसात्मक हिनकारी है—अपमान
 समझावाह में अरब मुल शांति का पा सकता है। अगा
 मुन और अम अथित इस अहिंसा-शासन का सुमधुर फल है।
 साक्षात्सर्ग अन्वयना करन का संकल्प कर में और बाद रने
 दिव्यरत्न का अहिंसा म यह कर और का माधन नहा है।
 अब निम्न हो, जाय —

कुली की स्थान इन्द्रपुरी की नर्मनी^१ जान,
 पाप रज गंडन को पीन राशि^२ देखिये ।

स दुम पावक बुभायरे को मयमाना,
 कमला मिलायरे सो दुती ज्यों विशेषिये ॥

शुगति यह मो प्रीत, पालने को आलीम^३,
 शुगति को इतर रद, आगन^४ ही देखिये ।

प्रेम दया कीने चित, निहँ लोक प्राणी हित,
 और कतून काह, लेखे में न लेखिये ॥१॥

• इतिशम्र •

भगवान् सहावीर की अहिंसा

(९०३)

और

भारत के राज्यों पर उसका प्रभाव



लेखक—

बाबू कामताप्रसाद जैन एम. आर. ए एस.

सम्पादक (वीर)



भूमिका लेखक—

मीहिताचार्य प० विश्वेश्वरनोर्थनी रड, एम. आर. ए. एम.

सुपरिन्टेन्डेंट सरदार म्युचियम तथा सुवर्ण पब्लिक लायमेटी

भूतपूर्व प्रोफेसर असबन्त कालीज जोधपुर



प्रकाशक—

मंत्री जैन मित्र मंडल धर्मपुरा देहली ।



प्रथम बार }
१००० }

वैसाख
वीर निवारण स० १४१९
मई १९३३

{ मूल्य ३ }

प्रेम, छोप कारक देहली में छपा ।

जैन मित्र मण्डल द्वारा प्रकाशित ट्रेस्ट

- १ उग्रमनानन्द, पंडित जगन्निगोत्री मुन्नार हिन्दी मुद्रण
- २ अहिंसा, प्र० जी० चक्रवर्ती
- ३ जैनधर्म व परमात्मा स्व० बापू कृष्णमदासजी वर्तमान मास उद् =
- ४ मरी मायना, प० जगन्निगोत्री मुन्नार मुद्रण
- ५ जैनधर्म विनामनी, स्व० बापू कृष्णमदासजी वर्तमान
- ६ रत्नकरंद भाषकाचार, पंडित गिरधर शर्मा
- ७ सत्यमन या हृदयराज्य, सुमेरुवाला अग्रवाल
- ८ ज्ञानमूलादय इत्यादि भाग बा० सरस्वती चक्रवर्ती
- ९ कलामे दीक्षा, भा० जगन्निगोत्री उद्दिष्टी
- १० मन्त्रमुखा निरूपणात्, भा० जगन्निगोत्री जैन चक्रवर्ती
- ११ मितवस्तुजगत्, भा० मा० गणेशजी मुन्नार
- १२ आर्य समाज
- १३ गुणजाल तारावली (महाप्रज्ञावर्ती उद्दिष्टी तनुमा)
- १४ जैनधर्म विधिकी प्रश्नोत्तर भाग, बा० गुरुचरण वर्तमान
- १५ रिपोर्ट मण्डल, मन्त्रोद्दिष्टी, म १०२५ तक उद्दिष्टी हिन्दी
- १६ सुषुप्त, तादिक, स्व० प० जैनमदासजी भाग उद्दिष्टी
- १७ हकादत दुनिया, भा० भागवत मुन्नार
- १८ जैनधर्म हा जैनमदासजी भाग विधिक धर्म सिद्धान्त हा
सर्वना है, बापू भादियाजी भा० ७० आनन्द, हिन्दी
- १९ मगधान महावीर श्री उनक राज, भा० शिष्य राजजी उद्दिष्टी
- २० सुयामातमनीक, बापू मै. लो. बाधजी मुन्नार मुद्रण
- २१ रिपोर्ट धार्मिक जगत् मन्त्रोद्दिष्टी २३ धर्मा मित्रोद्दिष्टी हि० उद्दिष्टी
- २२ अहिंसा धर्म पर बा० निगोत्री उद्दिष्टी भा० जगन्निगोत्री
- २३ हकीकत भावुक, भा० मी० नानाश मुन्नार